मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 43 • वर्ष 5 • अंक 5 • जुलाई 2015 • पाँच रुपये • 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

विश्व स्तरीय शहर बनाने के लिए मेहनतकशों के घरों की आहुति! 5

यूनानी जनता में पूँजीवाद के विकल्प की आकांक्षा और सिरिज़ा की शर्मनाक ग़द्दारी 10

जन्मदिवस पर चन्द्रशेखर आज़ाद का प्रेरणादायी संस्मरण 14

मज़दूरों की सबसे बड़ी दुश्मन फासीवादी मोदी सरकार के भ्रष्ट, अपराधी, झूठे और बेशर्म चेहरे से उतरता नक़ाब!

व्यापम घोटाला, ललित मोदी घोटाला, पंकजा मुण्डे घोटाला, तावड़े घोटाला, दर्जनों गवाहों की हत्या, व्याभिचारी बाबाओं को संरक्षण, श्रम क़ानूनों की हत्या, साम्राज्यवादी-ज़ियनवादी इज़रायली हत्यारों के साथ गलबँहिया!

"अच्छे दिनों" की असलियत पहचानने में क्या अब भी कोई कसर बाक़ी है?

सम्पादक मण्डल

नैतिकता, शुद्धता, प्राचीन भारतीय सभ्यता, सदाचार, हिन्दू संस्कृति वगैरह की बात करने वाले साम्प्रदायिक फासीवादी अपने सरगना नरेन्द्र मोदी की अगुवाई में 16 मई 2014 को भारी बहुमत से जीतकर सत्ता में पहुँचे थे! लेकिन साल भर बीतते-बीतते इन संघी फासीवादियों ने भ्रष्टाचार, व्याभिचार, अपराध, घूसखोरी, बेशर्मी और गन्दगी के सारे रिकॉर्ड ध्वस्त कर दिये! चुनावों से पहले देश की जनता को "अच्छे दिनों", हर खाते में पन्द्रह लाख रुपये डालने, "न खाने और न खाने देने" का वायदा करने वाले ये संघी धर्मध्वजाधारी साल भर सत्ता में रहने में ही भ्रष्टाचार के गन्दे कीचड़ में इस कदर सन गये हैं कि जनता अचम्भित है! ऊपर से सीनाज़ोरी का आलम यह है कि सीबीआई के अनुसार एक समय फिरौती वसूलने वालों का गिरोह चलाने वाले और दंगे भड़काने में माहिर भाजपा अध्यक्ष अमित शाह ने हर चुनावी वायदे पर जनता को ठेंगा दिखा दिया। जब जनता ने हर खाते में पन्द्रह लाख रुपये डालने और विदेशों से काला धन वापस लाने के वायदे बारे में पूछना शुरू किया तो अमित शाह ने कहा वो तो बस चुनावी जुमला था, तुम लोगों ने उस बात को गम्भीरता से क्यों ले लिया! फिर जनता ने "अच्छे दिनों" के वायदे के बारे में पूछा तो अमित शाह ने बोला कि उसमें तो अभी 25 साल लगेंगे और भाजपा को पाँच बार और जिताओ तब "अच्छे दिन" आयेंगे! यही आलम दूसरे भाजपा नेताओं का भी है। जब हज़ारों करोड़ रुपये के व्यापम घोटाले के बारे में एक भाजपा नेता से पूछा गया तो उसने बोला कि ये तो छोटी-सी घटना है! फिर जब लोगों ने पूछा कि व्यापम घोटाले के लगभग 50 गवाह रहस्यमय तरीके से मारे क्यों गये तो मध्य प्रदेश के सठिया चुके भाजपा नेता बाबूलाल गौर ने कहा कि यह तो प्रकृति का नियम है कि जो आता है, उसे जाना होता है! यह वही बाबूलाल गौर हैं जिन्होंने एक बार एक रूसी महिला को धोती उतारना सिखाने की पेशकश की थी! सत्ता के नशे में चूर संघी हाफ पैंटिया फासीवादी गिरोह उस बुनियादी शर्म-ओ-हया को भूल गया है, जिसका पालन पूँजीवादी राजनीतिज्ञ भी आम तौर पर किया करते हैं; यानी भ्रष्टाचार करते हैं, तो थोड़ी पर्देदारी करते हैं! मगर बहुत दिनों से सत्ता में आने का इन्तज़ार कर रहे भाजपाई जब सत्ता में आये तो उनके सब्र का प्याला एकदम से छलक गया और अब कमाई करने और अपनी सात पुश्तों की ज़िन्दगी सुरक्षित कर देने की अन्धी हवस में ये एकदम आपा खो बैठे हैं!

नरेन्द्र मोदी, वसुन्धरा राजे, सुषमा स्वराज जैसे शीर्ष भाजपा नेताओं का नाम तमाम किस्म के आर्थिक अपराधों के आरोप में देश से भागे हुए एक भगोड़े दलाल ललित मोदी की तरह-तरह से सेवा करने और तलवे चाटने में सामने आया है। राजस्थान की मुख्यमन्त्री वसुन्धरा राजे ने तो ब्रिटिश सरकार को यहाँ तक लिखकर दे दिया कि ललित मोदी के लिए वह हर प्रकार की सहायता कर सकती हैं, बस सरकार को इसका पता नहीं चलना चाहिए! सुषमा स्वराज ने लंदन में बैठे ललित मोदी को वीज़ा दिलाने में मदद की और इसके पीछे तर्क दिया कि उसकी पत्नी को कैंसर था और इसलिए इलाज के लिए "मानवीय आधार" पर जाने में उन्होंने मोदी की मदद की! जिस देश में हज़ारों बच्चे रोज़ भूख से मरते हों, करोड़ों

(पेज 10 पर जारी)

कौशल विकास : मज़दूरों के लिए नया झुनझुना और पूँजीपतियों के लिए रसमलाई

भाजपा की सरकार ने गाजे-बाजे के साथ कौशल विकास योजना की शुरुआत की है। ग़रीबों-मज़दूरों की अच्छी-ख़ासी तादाद इस योजना की ओर ललचाई निगाहों से देख रही है। जनता समझ रही है कि शायद इस बार भाजपा सरकार और भाजपा नेता अपने वायदे सचमुच में निभाने वाले हैं। वैसे देखा जाये तो इसमें नया कुछ भी नहीं है। जनता इतने ही भोलेपन के साथ चुनावबाज़ पार्टियों के वायदों पर पिछले 68 सालों से यकीन करती चली आ रही है। ऐसा इसलिए है क्योंकि वह चुनाव लड़ने वाली राजनीतिक पार्टियों के नारों के पीछे छिपे हुए शासक वर्ग के हितों को देखने-समझने में नाकाम रहती है।

मोदी सहित भाजपा के तमाम नेता धुआँधार तरीक़े से 'कौशल विकास योजना' का धुआँ छोड़ने में लगे हुए हैं। सरकार और नेता दोनों ही दावा कर रहे हैं कि वर्ष 2022 तक 45 से 50 करोड़ लोगों को न सिर्फ़ हुनर सिखाये जायेंगे बल्कि उन्हें रोज़गार भी दिया जायेगा। इन सरकारी दावों की सच्चाई समझने के लिए कुछ और तथ्यों को जान लेना ज़रूरी है। सरकार का कहना है कि सरकारी स्कूलों और आईटीआई संस्थानों को कम्पनियों द्वारा विभिन्न कोर्स चलाने के लिए दिया जायेगा, इस तरह ग़रीबों और निम्न मध्यवर्ग के बेटे-बेटियों को कुशल श्रमिक बनाने का रास्ता तैयार किया गया है। लेकिन चूँकि पहले से ही असंगठित क्षेत्र में करीब 44 करोड़ कामगार काम कर रहे हैं उनको कुशल श्रमिक बनाने के लिए अलग से एक विशेष योजना तैयार की गयी है, मोदी सरकार इन 44 करोड़ कामगारों को कारख़ानों में प्रशिक्षण देने वाली है और यहीं पर इस योजना का असली पेंच है। सवाल यह है कि जब इतने कारख़ाने हैं ही नहीं तब भला इतने बड़े-बड़े दावे क्यों किये जा रहे हैं! असल में यह कौशल विकास के नाम पर मज़दूरों को लूटने और पूँजीपतियों को सस्ता श्रम उपलब्ध कराने का हथकण्डा मात्र है। देश में एपरेन्टिस एक्ट 1961 नाम का एक क़ानून है जिसके तहत चुनिन्दा उद्योगों में ट्रेनिंग की पहले से ही व्यवस्था मौजूद है। इस क़ानून के तहत कारख़ानों में काम करने वाले एपरेन्टिस या ट्रेनी पहले से ही ज़्यादातर श्रम क़ानूनों के दायरे से बाहर हैं। सरकार के अनुसार इस समय देश में मात्र 23800 कारख़ाने ऐसे हैं जो एपरेन्टिस एक्ट 1961 के अन्तर्गत आते हैं। सरकार की मंशा है कि अगले 5 सालों में इन कारख़ानों की संख्या बढ़ाकर 1 लाख कर दी जाये। ज़ाहिर सी बात है कि यह योजना केवल 5 साल के लिए नहीं है और इसका मक़सद है कि ट्रेनिंग या कौशल विकास के नाम पर ज़्यादा से ज़्यादा कारख़ानों को श्रम क़ानूनों और न्यूनतम वेतन के क़ानूनों के दायरे से बाहर कर दिया जाये।

(पेज 13 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

कई सारे शहरों में मैंने काम किया है, लेकिन सभी जगह मज़दूरों की हालत एक सी ही है

मेरा नाम मोहम्मद मेहताब है और मैं मुम्बई के मण्डाला की एक स्टील फ़ैक्टरी में काम करने वाला मज़दूर हूँ। जिस फ़ैक्टरी में मैं काम करता हूँ उसमें 25 से 30 लोग काम करते हैं जिनमें 10-12 महिलाएँ हैं। यहाँ पास में ही दो और फ़ैक्टरियाँ भी हैं और तीनों फ़ैक्टरियों में कुल मिलाकर लगभग 350 मज़दूर काम करते हैं जिनमें लगभग 200 महिलाएँ हैं। फ़ैक्टरी में स्टील पोलिशिंग का काम होता है और यह काफ़ी ख़तरनाक है। स्टील लाइन में वैसे भी सारे ही काम बहुत ख़तरनाक हैं और आये दिन फ़ैक्टरियों में दुर्घटना होती रहती है। दुर्घटना होने पर मालिक थोड़ी-बहुत दवा-दारू करवा देता है, लेकिन मुआवज़ा कभी नहीं दिया जाता। दुर्घटना के बाद मालिक मज़दूरों को काम पर भी नहीं रखता है।

यहाँ रोज़ 12-13 घण्टे से कम काम नहीं होता है। जिस दिन लोडिंग-अनलोडिंग का काम रहता है उस दिन तो 16 घण्टे तक काम करना पड़ता है। हफ़्ते में 2-3 बार तो लोडिंग-अनलोडिंग भी करनी ही पड़ती है। मुम्बई जैसे शहर में महँगाई को देखते हुए हमें मज़दूरी बहुत ही कम दी जाती है। अगर बिना छुट्टी लिये पूरा महीना हाड़तोड़ काम किया जाये तो भी 8-9 हज़ार रुपये से ज़्यादा नहीं कमा पाते हैं। हम चाहकर भी अपने बच्चों को अच्छे स्कूलों में नहीं भेज सकते। यहाँ किसी भी फ़ैक्टरी का रजिस्ट्रेशन नहीं हुआ है और श्रम-क़ानूनों के बारे में किसी भी मज़दूर को नहीं पता है। बहुत से मज़दूरों को फ़ैक्टरी के अन्दर ही रहना पड़ता है क्योंकि मुम्बई में सिर पर छत का इन्तज़ाम कर पाना बहुत मुश्किल है। ऐसे मज़दूरों का तो और भी ज़्यादा शोषण होता है। हमें शुक्रवार को छुट्टी मिलती है लेकिन उन्हें तो रोज़ ही काम करना पड़ता है।

पहले मैं इलाहाबाद में रहता था और वहाँ पर खाद के कारख़ाने में काम करता था। और भी कई सारे शहरों में मैंने काम किया है, लेकिन सभी जगह मज़दूरों की हालत एक सी ही है। मेरे ख़्याल से हम सभी मज़दूरों को एकजुट हो जाना चाहिए और अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए। हमें अपनी मजबूत यूनियन बनानी होगी और तभी हम मालिकों से लड़ सकते हैं। पहले से जो बड़ी-बड़ी यूनियनें हैं, वे मज़दूरों के लिए काम नहीं करती हैं। हमें ऐसी यूनियनों से बचना होगा और ख़ुद अपनी क्रान्तिकारी यूनियन बनानी होगी।

– **मोहम्मद मेहताब**, मुम्बई

कुछ दिन पहले मुझे कुछ लोगों से मज़दूर बिगुल अख़बार मिला जिसको कुछ लड़के-लड़कियाँ मेरी बस्ती में भाषण देकर बेच रहे थे। पढ़कर मुझे लगा कि इसमें हमारे हक़ की बात लिखी है। मैंने उसमें दिये नंबर पर फोन करके बताया कि मेरे कारख़ाने का मालिक मेरे नाजायज पैसे काट लेता है, जबरन ओवरटाइम करवाता है और माँगने पर गाली देता है। क्या आप लोग इसमें कोई मदद करेंगे। उधर से कहा गया कि इस तरह से एक-एक मज़दूर को पैसे दिलवाने का काम हम लोग नहीं करते। अगर आप अपने हक़ के लिए लड़ने को तैयार हो तो हम आपके साथ खड़े होंगे और आपको लड़ाई के तरीक़े भी बतायेंगे। लेकिन आपकी लड़ाई का ठेका हम नहीं लेंगे। पहले तो मुझे बहुत बुरा लगा और मैंने मन ही मन गाली देकर फोन रख दिया। लेकिन वे लोग अगले महीने मुझे फिर मिले, अब मैं सोचता हूँ कि उनकी बात तो सही है। मैं और मज़दूरों से अब यही बात करता हूँ।

– **एक मज़दूर**, तालकटोरा औद्योगिक क्षेत्र, लखनऊ

साहब! एक बात पूछूँ?

साहब! एक बात पूछूँ?
हाँ-हाँ, पूछो!
देश में भुखमरी क्यूँ है?
अरे बस! इतनी सी बात, जनसंख्या बढ़ रही है
नहीं भई! ये बात हज़म नहीं हुई,
देखो तो गोदामों में, कितना गेहूँ सड़ रहा है।

भैया एक सवाल और...?
हाँ-हाँ पूछो!
लोग नंगे क्यूँ हैं?
अरे जनसंख्या ज़्यादा है,
क्या! समझ में नहीं आया लफड़ा?
नहीं-नहीं भाई, ये बात भी ग़लत,
जाकर देखो तो दुकानों में,
ख़ूब पड़ा है कपड़ा

भैया एक सवाल...?
अरे हाँ-हाँ, पूछो-पूछो
छोटी-मोटी बीमारी से भी,
क्यूँ मर जाते हैं लोग?
भाई साहब! जनसंख्या बढ़ रही है,
क्या! बात समझ नहीं आयी?
ऊँ हूँ, हर साल टनों के हिसाब से,
एक्सपायर होती हैं दवाइयाँ
घबराये से लहजे में...
भैया, मकान भी नहीं हैं,
यार जनसंख्या ज़्यादा है,
कहाँ से आयेंगे इतने बंकर?
मज़ाक़ मत करो भैया,
देश में ख़ूब है,
मिट्टी, रेत, पत्थर, कंकर और बनाने वाले हाथ भी,
थोड़े हौसले से...
क्यूँ नहीं सबको अच्छी शिक्षा?
बरखुद्दार! जनसंख्या बहुत है,
क्या अब ग़रीब भी,
रीस करेंगे नवाबों की?

भाई साहब! एक बात बताऊँ,
देश में कमी नहीं है
शिक्षक और किताबों की
पूरे हौसले से...
क्या ग़रीब मज़दूर,
नहीं छूटेंगे शोषण से?
सब मौजूद! इसके बावजूद!
हर रोज़ हज़ारों बच्चे, भूखे-नंगे,
मरते हैं कुपोषण से,
बस भैया! अब और नहीं।
थी जो ग़लत धारणा की पट्टी,
मेरी आँखों पर
अब वो धीरे-धीरे हट रही है,
अब आया मेरी समझ में
जनसंख्या बढ़ नहीं, घट रही है।
जनसंख्या बढ़ नहीं, घट रही है।

– **संजू यादव**, कलायत, कैथल, हरियाणा

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:
डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**
ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।
2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।
3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।
4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।
5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,
बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।
मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यता: (वार्षिक) 70 रुपये (डाकख़र्च सहित);
(आजीवन) 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658,
ईमेल: bigulakhbar@gmail.com
फेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - 2000/-

उत्तर-पूर्वी दिल्ली के खजूरी इलाक़े में साम्प्रदायिक माहौल बनाने में फिर सक्रिय हुआ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

'सबका साथ - सबका विकास' और सबके लिए 'अच्छे दिनों' के नारे की हवा मोदी सरकार के पहले साल के कार्यकाल में ही निकल गयी। अब आम मेहनतकश जनता समझने लगी कि मोदी किसका विकास चाहते हैं और किसके अच्छे दिनों के लिए दुनिया घूमने में लगे हैं। लेकिन आम मेहनतकश जनता चुनाव के समय किये गये वायदों पर सवाल न करें और न ही सरकार की मज़दूर विरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ एकजुट हों, इसीलिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) देश में फिर अपने असली ऐजण्डे यानी साम्प्रदायिक माहौल बनाने में लग गया है।

दिल्ली-एनसीआर में जगह-जगह ऐसी कोशिशें जारी हैं। पिछले दिनों फ़रीदाबाद के अटाली गाँव में लोगों के घर व मस्जिद तोड़ी गयी जिससे आज भी सैकड़ों लोग बेघर रहने को मजबूर हैं। मुरादाबाद से मुज़फ़्फ़रनगर तक के कई इलाक़ों में आरएसएस फिर लोगों का सौहार्द बिगाड़ने में लगा है। इसी क्रम में उत्तर-पूर्वी दिल्ली के खजूरी की श्रीराम कॉलोनी में दो समुदाय के लड़कों के बीच हुए मामूली झगड़े को साम्प्रदायिक रंग देने में आरएसएस जी-जान से लगा हुआ है। 27 जून 2015 को इस कॉलोनी के रामलीला ग्राउण्ड (राजीव पार्क) में कुछ मुस्लिम लड़के बैडमिण्टन खेल रहे थे। इसी ग्राउण्ड में आरएसएस की शाखा लगा रहे लड़कों ने दूसरे समुदाय के लड़कों से शाखा के वक़्त यहाँ कुछ भी खेलने से मना किया। आरएसएस से जुड़े इन लड़कों द्वारा दूसरे समुदाय के लड़कों को गाली-गलौच कर ग्राउण्ड से बाहर कर दिया गया; ऐसा करने में आरएसएस के बड़ी उम्र के लोगों का भी साथ रहा है। अगले दिन यानी 28 जून को जब आरएसएस से जुड़े ये लड़के ग्राउण्ड में पहुँचे तो दूसरे समुदाय के लड़कों ने योजना बनाकर इन लड़कों की जमकर पिटाई कर दी। फिर क्या था आरएसएस ने उसी समय थाने जाकर दूसरे समुदाय के पाँच लड़कों के ख़िलाफ़ एफ़आईआर दर्ज करा दी। एक या दो दिन के अन्दर इन सभी पाँचों लड़कों को गिरफ़्तार कर लिया गया। पुलिस अपनी कार्रवाई कर रही है।

लेकिन अगले दिन (29 जून) आरएसएस के सैकड़ों लोग रामलीला ग्राउण्ड में एकत्रित हुए और दूसरे समुदाय के ख़िलाफ़ भड़काऊ भाषण देने लगे। साथ ही ऐसे नारे लगा रहे थे कि - 'जो ग्राउण्ड में आएगा - मार दिया जाएगा' उसी दिन आरएसएस के यहाँ के लोगों द्वारा घोषणा की गयी कि 17 से 19 जुलाई 2015 तक इस ग्राउण्ड में उन लोगों का 'महा-सम्मेलन' होगा और इस दौरान किसी और व्यक्ति को ग्राउण्ड में नहीं आने दिया जायेगा। ग़ौरतलब है कि 18 या 19 जुलाई को ही ईद का त्यौहार है और हर साल इसी ग्राउण्ड में ईद की नमाज़ होती है। ऐसे में आरएसएस द्वारा इस दौरान किसी 'महा-सम्मेलन' की घोषणा करने से इस मुस्लिम बहुल इलाक़े में तनाव की स्थिति बन गयी है। उस दिन के बाद अभी-भी रोज़ सुबह आरएसएस के लोग शाखा लगाने आते हैं। पुलिस उनकी सुरक्षा में खड़ी रहती है और उस दौरान कॉलोनी के किसी अन्य व्यक्ति या बच्चे को ग्राउण्ड में आने नहीं दिया जाता है।

इस कॉलोनी के लोगों ने पहलक़दमी दिखाते हुए ईद वाले दिन आरएसएस द्वारा शाखा ग्राउण्ड में न लगने और सुरक्षा की माँग को लेकर दिल्ली पुलिस के कमिश्नर से मुलाक़ात की थी; लेकिन उनकी तरफ़ से भी इस सम्बन्ध में कोई ठोस आश्वासन नहीं मिला है। जबकि राजनीतिक दबाव के चलते इलाक़े के एसएचओ और डीसीपी ने साफ़ कहा कि ईद पर भी आरएसएस के लोग ज़रूर आयेंगे और प्रशासन उन्हें नहीं रोकगा। उनके मुताबिक़ ग्राउण्ड में शाखा लगने के बाद नमाज हो जायेगी। यहाँ बता दें कि पिछले साल ईद (बकराईद) पर भी यही तय हुआ था; लेकिन आरएसएस के लोगों ने तय समय में ग्राउण्ड ख़ाली नहीं किया, इस पर मुस्लिम समुदाय के कुछ लोग भड़क गये थे और आरएसएस के लोगों से थोड़ी-सी झड़प हो गयी थी। आरएसएस के लोगों ने मुस्लिम समुदाय पर मार-पीट के कई झूठे केस दर्ज करा दिये और फिर इस घटना को साम्प्रदायिक रंग दे दिया गया। इस बार भी दो समुदाय के लड़कों के मामूली झगड़े को साम्प्रदायिक बनाने की कोशिश की जा रही है। हालाँकि अब इसमें यहाँ के मुस्लिम कट्टरपन्थी पीछे नहीं हैं। ऐसे में काफ़ी आशंका है कि इस बार भी ईद वाले दिन साम्प्रदायिक तनाव की स्थिति पैदा हो। यह रिपोर्ट लिखे जाने तक यह तय हुआ कि यहाँ काम कर रहे संगठन 'नौजवान भारत सभा' के साथ कॉलोनी के लोग फिर दिल्ली पुलिस के कमिश्नर से मिलेंगे और ज़रूरत पड़ी तो लोगों के साथ मिलकर कोर्ट में इस सम्बन्ध में याचिका भी लगायी जायेगी।

दिल्ली-एनसीआर में हो रही ऐसी घटनाओं से साफ़ हो रहा है कि संघ परिवार (आरएसएस) साम्प्रदायिक तनाव की आग सुलगाये रखना चाहते हैं, ताकि वक़्त आने पर उसके शोलों को हवा दी जा सके और लोगों को एक होकर लुटेरी सत्ता से लड़ने की बजाय आपस में लड़ाया-मराया जा सके। लेकिन मेहनतकश जनता को समझना होगा कि धार्मिक कट्टरपन्थी हमें आपस में लड़वाते हैं, स्वयं हमेशा सुरक्षित रहते हैं। हम उनके झाँसे में आकर अपने ही वर्ग भाइयों से लड़ते हैं। जबकि ज़िन्दगी को बदलने की असली लड़ाई में लगने के लिए सभी मेहनतकशों की एकता ही इसकी पहली शर्त है।

दिल्ली संवाददाता

हरियाणा सरकार के 'बेटी बचाओ अभियान' का असली चेहरा खट्टर सरकार द्वारा नर्सिंग छात्राओं पर बर्बर पुलिसिया दमन!

हरियाणा सरकार एक तरफ़ तो "बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ" का ढोल पीट रही है और वहीं दूसरी तरफ़ हज़ारों नर्सिंग छात्राओं के भविष्य के साथ न केवल खिलवाड़ कर रही है, बल्कि उनके संघर्ष को दबाने के लिए बर्बर पुलिस कार्रवाई भी कर रही है। अभी 10 जुलाई को करनाल में मुख्यमन्त्री कार्यालय पर 1200 नर्सिंग छात्राओं पर हरियाणा पुलिस ने बर्बर लाठीचार्ज किया। नर्सिंग छात्राएँ मुख्यमन्त्री कार्यालय के घेराव के लिए शान्तिपूर्ण तरीक़े से आगे बढ़ रही थीं, लेकिन पुलिस ने रास्ते में ही बेरिकेड्स पर प्रदर्शनकारियों को रोक लिया और बिना कोई चेतावनी दिये बर्बर तरीक़े से लाठीचार्ज कर दिया और छात्राओं को खदेड़ना शुरू कर दिया। लेकिन लाठी खाने के बाद भी छात्राएँ बहादुरी के साथ डटी रहीं, जिसके बाद पुलिस ने प्रदर्शनकारियों पर पानी की बौछार की। पुलिस की बर्बर

कार्रवाई में लगभग 12 छात्राओं को गम्भीर चोटें आयीं। प्रशासन की कायरता यह थी कि नर्सिंग छात्राओं के ख़िलाफ़ ज़्यादातर पुरुष पुलिसकर्मियों को आगे किया। जो सरासर गलत है, साथ ही प्रदर्शन में 6 छात्राओं पर झूठे मुकदमे दर्ज कर लिये गये हैं।

ज्ञात हो कि ये सभी नर्सिंग छात्राएँ एएनएम और जीएनएम की प्रथम वर्ष की परीक्षार्थी हैं जिनका पिछले सात माह से प्रथम वर्ष की परीक्षाओं के परिणाम ही नहीं घोषित किये गये और छात्राओं ने अगली कक्षाओं की पढ़ाई प्रारम्भ कर दी। जब छात्राओं ने परिणाम घोषित करने के लिए आन्दोलन की चेतावनी दी तो खट्टर सरकार ने तुगलकी फ़रमान से प्रथम वर्ष की परीक्षाओं को ही रद्द कर दिया। जिसके बाद नर्सिंग छात्राएँ करनाल में मुख्यमन्त्री कार्यालय पर अपनी जायज़ माँगों को लेकर मिलने पहुँची थीं। लेकिन हरियाणा में "बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ" से लेकर "सेल्फ़ी विद डॉटर" का ढोल पीटने वाली खट्टर सरकार ने छात्राओं का स्वागत लाठियों और पानी की बौछारों से किया।

आज यह बात स्पष्ट है कि मौजूदा खट्टर सरकार भी पिछली तमाम सरकारों की तरह ही हरियाणा की आम जनता के हक़-अधिकारों पर डाका डाल रही है। असल में चुनाव से पहले किये जाने वाले बड़े-बड़े वायदे केवल वोट की फ़सल काटने के लिए ही होते हैं। गेस्ट टीचर, अस्थायी कम्प्यूटर टीचर, आशा वर्कर, रोडवेज़ कर्मचारी, मनरेगा मज़दूर, एनसीआर के औद्योगिक मज़दूर आदि आयेदिन अपनी जायज़-न्यायसंगत माँगों को लेकर सड़कों पर उतर रहे हैं लेकिन सरकार के कानों पर जूँ तक नहीं रेंग रही। चुनाव से पहले भाजपा ने हरियाणा की आम जनता, यहाँ के बेरोज़गार नौजवानों, शिक्षकों, कर्मचारियों, मज़दूरों-किसानों को ख़ूब रंगीन-गुलाबी सपने दिखाये थे किन्तु अब सरकार बनाने के बाद रंग बदलने में भाजपा गिरगिटों को भी शर्मिन्दा कर रही है।

खट्टर सरकार की जनविरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ जनता को फ़ौलादी एकजुटता क़ायम करनी होगी। वरना कभी गेस्ट टीचर, कभी नर्सिंग छात्राओं या कोई और ऐसे ही दमन का शिकार होते रहेंगे।

हरियाणा बिगुल संवाददाता

झुग्गियों पर हमला अभी भी जारी है!

चुनावबाज़ पार्टियों के खोखले वादों को पहचानना होगा और आम मेहनतकश जनता को आगे की लड़ाई के लिए तैयार होना होगा!

4 जुलाई को वज़ीरपुर के मछली मार्किट स्थित डी-3 फ़ैक्टरी के पास की चार झुग्गियों पर डीडीए द्वारा बुलडोज़र चलाकर उसे ज़मींदोज कर दिया गया। दोपहर के 12:30 बजे डीडीए के अधिकारियों ने झुग्गीवासियों से आधे घण्टे के अन्दर अपना सारा सामान समेट लेने को कहा। झुग्गीवालों ने वहाँ मौजूद अधिकारियों को अपने राशन कार्ड, आधार कार्ड, बिजली के बिल लाकर दिखाये और बताया कि वे 20 साल से और कुछ तो 35 साल से वहाँ पर रह रहे हैं, तब भी वहाँ खड़े अधिकारियों ने झुग्गीवालों की बात को अनसुना कर दिया। झुग्गीवालों के बार-बार अधिकारियों से उन्हें समय देने और उनकी बात सुनने की गुहार लगाने के बावजूद अधिकारियों ने गुण्डों और पुलिस की मदद से जबरन सामान बाहर फेंकवाना शुरू कर दिया। इस पूरी कार्यवाही के दौरान एक परिवार की गुल्लक से 4000 और एक के बैग से 8000 रुपये ग़ायब हो गये। झुग्गियों के टूटने से पहले झुग्गीवासी किसी तरह बारिश में अपना जीवनयापन कर रहे थे, मगर अब उनके सिर से छत ही छीन ली गयी है और उन्हें फ़ूटपाथ पर जीने के लिए पटक दिया गया है। चुनाव से पहले आम आदमी पार्टी ने वायदा किया था कि पाँच साल तक एक भी झुग्गी नहीं टूटेगी और झुग्गी के बदले पक्के मकान दिये जायेंगे, मगर सरकार बनने के बाद से सिर्फ़ वज़ीरपुर में ही यह झुग्गियाँ टूटने की तीसरी घटना है। सत्ता में आने के 100 दिन के भीतर ही आम आदमी पार्टी के चुनावी वादों की पोल अब जनता के सामने खुल रही है। झुग्गीवासियों के दम पर 70 में से 67

सीट जीतने वाली आप की सरकार आज उसी को ख़ून के आँसू रुला रही है। जहाँ दिसम्बर की ठण्ड में आज़ादपुर की पटरी के पास रेलवे द्वारा 10 झुग्गियाँ तोड़ी गयी थीं, उसके बाद जेलर बाग में एक स्कूल और उससे लगी झुग्गियाँ तोड़ी गयी थीं और अभी भी पूरी दिल्ली भर के अलग-अलग इलाक़ों (शहादरा, खजूरी, मुकुन्दपुर) में भी झुग्गियों को तोड़े जाने की घटनाएँ लगातार सामने आ रही हैं।

दिल्ली विधानसभा चुनाव से पहले भाजपा, कांग्रेस, आप, नक़ली लाल झण्डे वाली पार्टियाँ झुग्गीवालों के बीच उनके हमदर्द होने का दम भर रही थीं। मगर जब ग़रीबों के घरों को बेदर्दी से कुचला जा रहा था, तब इनमें से कोई वहाँ झुग्गीवालों की मदद करने या उनको सहारा देने नहीं पहुँचा। जब झुग्गीवालों ने फ़ोन कर सबको बुलाया तो कुछ कोरे आश्वासन देकर चले गये और कुछ ने तो जुबानी कवायद करना भी ज़रूरी नहीं समझा। चुनाव से पहले भाजपा सरकार के भूमि अधिग्रहण क़ानून में किये संशोधन की निन्दा करते हुए केजरीवाल साहब ने चाणक्यपुरी के बस्तीवालों से वादा किया था कि अगर उनकी पार्टी सत्ता में आती है तो झुग्गियों की जगह उन्हें पक्की रिहाइश मुहैया करायी जायेगी और सभी अनियमित कॉलोनियों और झुग्गियों को नियमित किया जायेगा। मगर आम आदमी की सरकार दिल्ली में बन जाने के बावजूद झुग्गियों पर हो रहे हमले बदस्तूर जारी हैं। 4 जुलाई को झुग्गियाँ टूटने के बाद वज़ीरपुर के विधायक ने वहाँ पहुँचकर जायजा लेना भी ज़रूरी नहीं समझा। बजट में रेडियो पर विज्ञापनों पर 526 करोड़ का ख़र्च निर्धारित करने वाली आम आदमी की सरकार ने मज़दूरों की झुग्गियों को बचाने के लिए कोई ख़ास इन्तेज़ामात नहीं किये। हर बार की तरह इस बार भी किसी न किसी तकनीकी व क़ानूनी जुगत की दुहाई देते हुए केजरीवाल साहब ख़ुद को झुग्गीवालों की मदद करने में अक्षम बता रहे हैं, नहीं तो क्यों अब तक उन्होंने कोई ठोस क़दम नहीं उठाया। दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन ने घटनास्थल पर पहुँचकर तथ्यों की जानकारी इकट्ठा की, क़ानूनी सहायता से लेकर झुग्गियों के पुनर्निर्माण के लिए संघर्ष का रास्ता झुग्गीवालों के सामने रखा। झुग्गियों को तोड़ने और बेघर हुए झुग्गीवालों को बसाने के बारे में बने क़ानून इतने लचर और गोलमोल हैं कि सरकार क़ानूनी दाँवपेचों में फँसाकर आम मेहनतकश जनता को उलझाये रखती है। 1960 के बाद से लेकर अब तक झुग्गियों के पुनर्वासन के बारे में जितने भी क़ानून हैं, उनमें पारदर्शिता की कमी होने के चलते सबसे ज़्यादा नुक़सान झुग्गीवालों को उठाना पड़ता है। झुग्गीवालों को छत दिलाने की ज़िम्मेदारी राज्य की है, अप्रत्यक्ष कर के रूप में सरकार हर साल खरबों रुपया आम मेहनतकश जनता से वसूलती है, ऐसे में यह आम मेहनतकश जनता की ग़लती नहीं है। बल्कि यह राज्य की ज़िम्मेदारी बनती है कि वह लोगों को रोज़गार मुहैया कराये और उनके रहने के लिए छत का इन्तज़ाम करे। दिल्ली के व्यापारियों के टैक्स माफ़ी के लिए तो केजरीवाल सरकार ने तत्परता दिखाते हुए सरकार बनने के कुछ समय के भीतर ही क़ानून में तब्दीली कर दी। मगर झुग्गीवालों से किये वादों को अमली जमा पहनाने में सरकार बिलकुल तत्पर नहीं दिख रही। दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन ने पूरे इलाक़े में परचा बाँटकर झुग्गीवालों को अपने हक़ के लिए एकजुट होने का सन्देश दिया क्योंकि जब तक पूरे इलाक़े के मज़दूर एक होकर सरकार पर दबाव नहीं बनायेंगे, तब तक हमारी बस्तियों में बुलडोज़र घरों को रौंधते रहेंगे। झुग्गियों का टूटना रुकवाने और पक्के मकानों का वादा पूरा करवाने के लिए इलाक़ाई एकजुटता ही एकमात्र रास्ता है। बिना व्यापक एकजुटता के सरकार पर दबाव बना पाना मुश्किल है। अगर हम अलग-थलग होकर लड़ते रहेंगे तो नुक़सान हमारा ही होगा।

वज़ीरपुर तेज़ाब फ़ैक्टरियों पर प्रदूषण के कारण लगे ताले! स्टील सेक्टर मन्दी में!!

सनी

वज़ीरपुर इण्डस्ट्रीयल इलाक़ा मन्दी का शिकार है। माल कम आ रहा है व मज़दूरों पर छँटनी की तलवार लटकी है। यह मन्दी ख़ासतौर पर गरम रोला, ठण्डा रोला तेज़ाब की यूनिटों में है। मज़दूरों के बीच इस समय डर और निराशा का मौहाल है। वैसे पावर प्रेस और पॉलिश का काम अभी भी तेज़ी से चल रहा है। मन्दी का कारण चीन के माल से प्रतिस्पर्धा के अलावा तेज़ाब की फ़ैक्टरियों में पड़े ताले हैं। इनकी वजह से पहले ही मन्दी की मार झेल रहे वज़ीरपुर इण्डस्ट्रीयल इलाक़े में एक बड़ी मन्दी छा गयी है। ख़ैर, यह हाल तो आज सम्पूर्ण विश्व पूँजीवादी व्यवस्था का है जिसकी बेहद छोटी सी कोशिका दिल्ली का यह फ़ैक्टरी इलाक़ा है। यह हालत हमारे सामने सवाल पैदा करती है – मसलन तेज़ाब फ़ैक्टरियों में ताले क्यों लगे हैं? मज़दूर वर्ग का इस सवाल पर क्या रुख़ होना चाहिए?

वज़ीरपुर स्टील सेक्टर में एक फ़ैक्टरी दूसरी फ़ैक्टरी से जुड़ी है। चोरी-छिपे तेज़ाब की एक-दो फ़ैक्टरी को छोड़कर कोई अन्य फ़ैक्टरी नहीं चल रही है। इस वजह ही से माल का उत्पादन कम है और मालिक मज़दूरों की छुट्टी कर रहे हैं। तेज़ाब की यूनिटों में ताले क्यों लगे हैं?

क्यों लगे हैं ताले?

राष्ट्रीय हरित ट्रिब्युनल के निर्देशानुसार तमाम फ़ैक्टरियों को प्रदूषण क्लियरेंस लेनी होती है। तेज़ाब यूनिट को यह क्लियरेंस फ़िल्टर लगाने पर मिलती है। फ़िल्टर इस्तेमाल किये तेज़ाब को नाले में डालने से पहले साफ़ कर उसे कम ख़तरनाक बनाता है। परन्तु वज़ीरपुर के मालिक अपना पैसा बचाने के लिए फ़िल्टर नहीं लगवाते हैं। वे सारा तेज़ाब वज़ीरपुर की नालियों में डाल देते हैं। जो रिसकर झुग्गियों में पहुँचता है। हमारे बच्चे तेज़ाब के पानी में ही घूमते हैं। यह पीने के पानी तक में जाता है जिससे वज़ीरपुर के हर मज़दूर और झुग्गीवालों की सेहत को ख़तरा होता है। लम्बे समय से उन फ़ैक्टरियों को ट्रिब्युनल की ओर से नोटिस मिला हुआ था, परन्तु फ़ैक्टरी मालिकों ने कोई कार्यवाही नहीं की। इस साल हाईकोर्ट ने जब इस पर की गयी अपील पर फ़ैसला किया तब यह बात आगे बढ़ी। यह बात सोचने की है कि अपीलकर्ता की यह अपील तब स्वीकार हुई है जब उस फ़ैसले में मेट्रो की खुदाई को हो रहे नुक़सान का ज़िक्र किया गया। यानी वज़ीरपुर में करीब 40 साल से बसी झुग्गी के लोगों की ज़िन्दगी की कोई क़ीमत नहीं है। इस देश के न्यायालयों के लिए मज़दूर इंसान ही नहीं है। दिल्ली की शान मेट्रो पर कोई ख़तरा पड़ने पर क़ानून की अन्धी आँखों को भी दिखायी देने लगा है।

साथियो, इलाक़े में कुछ मज़दूर चाहते हैं कि कैसे भी करके फ़ैक्टरी चलनी चाहिए। निश्चित ही फ़ैक्टरी चलें परन्तु पर्यावरण को नुक़सान पहुँचाये बिना। हमारी ज़िंदगी को ख़तरे में डाले बिना। ख़ुद तेज़ाब पर काम करने वाले मज़दूरों के फेफड़े खराब हो जाते हैं और वे साँस की कई बीमारियों का शिकार होते हैं। हमारी माँग होनी चाहिए कि फ़ैक्टरियों को चलाया जाये परन्तु हमारी ज़िन्दगी को ख़तरे में डाले बिना। दूसरा तेज़ाब न सिर्फ़ हमारे लिए ही ख़तरनाक है बल्कि पर्यावरण को भी नुक़सान पहुँचाता है। पूँजीपति धरती का और हमारा दोहन कर अधिक से अधिक मुनाफ़ा कमाना जानते हैं। मज़दूर वर्ग को सिर्फ़ अपने वेतन-भत्ते की लड़ाई तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि इस धरती को भी बचाने की माँग करनी चाहिए। भारत में ज़बरदस्त बेरोज़गारी और ग़रीबी के कारण इन माँगों पर लड़ना दूर की कौड़ी लगता है, परन्तु यह लड़ाई मज़दूरों को लड़नी ही है, क्योंकि यह धरती भी हमारी है। निश्चित ही पर्यावरण को बचाने की लड़ाई बिना पूँजीवादी व्यवस्था को ख़त्म किये और मज़दूर राज क़ायम किये बिना पूरी नहीं होगी। परन्तु इसकी शुरुआत इन्हीं लड़ाइयों से ही होगी।

पटेल चेस्ट इंस्टिट्यूट की नर्सों की हड़ताल

पटेल चेस्ट इंस्टिट्यूट में काम कर रही नर्सें दिल्ली नर्सेस यूनियन के तहत अपनी माँगों को लेकर 5 जुलाई से हड़ताल पर बैठी हैं। दिल्ली स्टेट गवर्नमेण्ट हॉस्पिटल कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन पटेल चेस्ट इंस्टिट्यूट की नर्सों के इस संघर्ष में उनका समर्थन कर रही है। हड़ताल पर बैठी नर्सों की माँग है कि छठे वेतन आयोग की सिफ़ारिशों के अन्तर्गत आने वाले सभी लाभ उन्हें दिये जाये, साथ ही बोनस, मरीज भत्ता और जोखिम भत्ता भी मुहैया कराया जाये। पटेल चेस्ट इंस्टिट्यूट के प्रशासन के दबाव के बावजूद भी नर्सें अपनी हड़ताल को बहादुरी के साथ आगे बढ़ा रही हैं। दिल्ली स्टेट गवर्नमेण्ट हॉस्पिटल कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन की तरफ़ से नर्सों के इस संघर्ष में अपना समर्थन देते हुए शिवानी ने कहा कि स्थायी नर्सों के इस संघर्ष में अन्य सरकारी अस्पतालों में काम कर रहे संविदा कर्मचारी भी उनके साथ हैं। और यह लड़ाई केवल स्थायी नर्सों की नहीं बल्कि सरकारी अस्पतालों में काम कर रहे सफ़ाई कर्मचारियों, नर्सिंग ऑर्डर्ली, ठेके पर काम कर रहे सभी अस्पताल कर्मियों की लड़ाई है। सरकारी अस्पतालों में मरीजों की संख्या वहाँ मौजूद सुविधाओं की तुलना में कहीं अधिक है जिसके चलते नर्सों पर काम का बेहद दबाव रहता है, ऐसे में लम्बी शिफ़्टों में काम करने के बावजूद नर्सों को पूरा मेहनताना भी नहीं मिलता।

झुग्गियों में रहने वालों की ज़िन्दगी का कड़वा सच :

विश्व स्तरीय शहर बनाने के लिए मेहनतकशों के घरों की आहुति!

सिमरन

दिल्ली जैसे शहर में जहाँ एक तरफ़ मेट्रो रेल की रफ़्तार से भी तेज़ भागती ज़िन्दगी है, जहाँ चमचमाती गाड़ियों की रेलमपेल के साथ-साथ बड़े-बड़े आलीशान मकान और कोठियाँ हैं, वहीं दूसरी तरफ़ वज़ीरपुर, आज़ादपुर, खजूरी, झिलमिल जैसी अनेक बस्तियाँ हैं। इन बस्तियों और झुग्गियों में रहने वालों की ज़िन्दगी का सबसे कड़वा सच है कि कभी भी बुलडोज़र से अपने घरों के ज़मींदोज हो जाने का ख़तरा। झुग्गियों में रहने वालों के सिर पर यह तलवार हमेशा लटकी रहती है कि कब कोई अधिकारी किसी सरकारी महकमे से आकर उनके सिर से छत छीनकर उन्हें सड़क पर पटक दे।

14-14 घण्टे काम करने के बाद भी आम मेहनतकश आबादी दो जून की रोटी भी बड़ी मुश्किलों के साथ जुटा पाती है, उसके ऊपर महँगाई के इस दौर में दिल्ली जैसे बेहद ख़र्चीले शहर में गुज़र-बसर करना अपने आपमें एक बहुत बड़ी चुनौती है। ऐसे में पक्के मकान का किराया उठा पाना आम मज़दूर आबादी के लिए नामुमकिन है, जिसके चलते एक बहुत बड़ी आबादी को झुग्गियों में रहने पर मजबूर होना पड़ता है। गाँव से एक बेहतर जीवन की आशा लेकर शहर में रहने आये लोगों के लिए दिल्ली शहर एक भीड़ से कम ख़तरनाक नहीं है। झुग्गियों में जीवन अपने आपमें एक चुनौती है, दमघोंटू छोटे कमरे जहाँ रोशनी भी ठीक से नहीं पहुँचती, गन्दी नालियों का पानी जो बारिश के समय झुग्गियों में आ जाता है, कूड़े के ढेर, फ़ैक्टरियों का कचरा और शौचालय की कमी इन सब मुसीबतों के बाद भी ये झुग्गियाँ इनमें रहनेवालों के लिए आराम करने और सिर छुपाने का एकमात्र साधन है।

दिल्ली शहर की चकाचौंध का इन्तज़ाम इन्हीं झुग्गियों में रहने वाली आबादी की मेहनत से होता है। मगर कभी सड़क निर्माण करने या फिर दिल्ली को विश्व स्तरीय शहर बनाने के नाम पर या फिर सरकारी ज़मीन पर अतिक्रमण करने के नाम पर झुग्गियों को मिट्टी में मिला दिया जाता है। केवल दिल्ली में ही 1600 से भी ज़्यादा ऐसी बस्तियाँ हैं जहाँ लोग झुग्गियों में रहते हैं। इनमें से 685 ऐसी अनियमित कॉलोनियाँ हैं जिन्हें शीला दीक्षित सरकार ने नियमित करने की घोषणा की थी। 2011 की जनगणना के मुताबिक़ दिल्ली शहर की 15% से भी ज़्यादा आबादी इन कॉलोनियों में रहती है।

हाल ही में वज़ीरपुर और आज़ादपुर में झुग्गियों के टूटने की घटनाओं ने एक बार फिर झुग्गिवासियों के भविष्य पर सवालिया निशान लगा दिया है। इस साल हुए विधानसभा चुनावों में भाजपा और आम आदमी पार्टी दोनों ने ही झुग्गियों के बदले पक्के मकान देने का वादा किया था। झुग्गीवालों का हमदर्द बनने की कसमें खाने वाली इन पार्टियों ने सत्ता दिलवाने के एवज में झुग्गीवालों से पक्के मकान का वादा तो किया मगर आम आदमी पार्टी की सरकार बन जाने के बावजूद भी दिल्ली में झुग्गियों पर हो रहे हमले थमे नहीं हैं। केजरीवाल साहब ने चुनाव से पहले वादा किया था कि पक्के मकानों का इन्तज़ाम होने तक दिल्ली में कही भी झुग्गियाँ नहीं तोड़ी जायेंगी। मगर सरकार बनने के बाद शहादरा, खजूरी और वज़ीरपुर में लगातार झुग्गियों को तोड़ा जा रहा है। झुग्गियों को तोड़ने के बाद झुग्गीवासियों के पुनर्स्थापन और पुनर्वासन की ज़िम्मेदारी सरकार की बनती है। अगर किसी भी कारणवश झुग्गियों को तोड़ा जाता है तो सरकार को झुग्गीवासियों को बसाने का काम करना चाहिए और अपनी इस ज़िम्मेदारी से वह भाग नहीं सकती। मगर दिल्ली के पूर्ण राज्य न होने के चलते और झुग्गियों के पुनर्स्थापन और पुनर्वासन के लिए बनाये गये क़ानूनों में पारदर्शिता की कमी के चलते सरकार अपनी इस ज़िम्मेदारी से पलड़ा झाड़ने में कामयाब हो जाती है।

1960 के बाद से अब तक तीन बड़ी लहरों में झुग्गी-झोपड़ी क्लस्टर (झुग्गी-झोपड़ी क्लस्टर ऐसी बड़ी कॉलोनियों को कहते हैं जहाँ एक साथ बड़ी तादाद में झुग्गियाँ मौजूद हों) को तोड़ा गया है जिनमें से सबसे ज़्यादा ताज़ा घटना है 2010 के कॉमन वेल्थ खेलों के समय 217 झुग्गी-झोपड़ी कलस्टरों का तोड़ा जाना। बर्बादी की इस पूरी कार्यवाही में 50,000 से भी ज़्यादा झुग्गियाँ तोड़ी गयी थीं। अभी तक उन लोगों के पुनर्वासन का काम पूरा नहीं हुआ है। 2011 के दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के द्वितीय अधिनियम (विशेष प्रावधान) के तहत दिसम्बर 2014 तक कोई भी झुग्गी-झोपड़ी क्लस्टर नहीं तोड़ा जा सकता था क्योंकि पहले से टूटे कलस्टरों के झुग्गीवासियों के पुनर्वासन का काम पूरे हुए बिना आगे की कार्यवाही करना सम्भव नहीं है, मगर इसके बावजूद दक्षिणी दिल्ली में सोनिया गांधी कैम्प के झुग्गी कलस्टर में 2013 में 40 झुग्गियाँ तोड़ी गयीं और 'रास्ते के अधिकार' (राइट ऑफ़ वे) की दुहाई देते हुए पीडब्ल्यूडी ने झुग्गीवालों को पुनर्वासित करने की ज़िम्मेदारी से हाथ झटक लिये। हालाँकि क़ानूनी तौर पर यह कार्यवाही ग़लत थी, इसके बावजूद आज भी झुग्गीवालों को न्याय नहीं मिला।

झुग्गियों से जुड़ी यह समस्या बेहद पेचीदा है। दिल्ली में 63% ज़मीन जिस पर झुग्गियाँ खड़ी हैं, डीडीए और रेलवे की है जोकि केन्द्र सरकार के अन्तर्गत आती है और बाक़ी बची ज़मीन पीडब्ल्यूडी, एमसीडी, डीयूएसआईबी (दिल्ली अर्बन शेल्टर इम्प्रूवमेण्ट बोर्ड) के अन्तर्गत आती है। ऐसे में केन्द्र और राज्य सरकार क़ानून की लचरता का फ़ायदा उठाते हुए झुग्गीवासियों को बेघर करने के बाद उनके प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों से मुँह मोड़ लेती है। 2010 में म्युनिसिपैलिटी के स्लम और झुग्गी-झोपड़ी विभाग को हटाकर डीयूएसआईबी का निर्माण किया गया था, जोकि दिल्ली की सरकार के अन्तर्गत आता है और इस एजेंसी को झुग्गी-झोपड़ी क्लस्टर के पुनर्स्थापन और पुनर्वासन के काम में मुख्य ज़िम्मेदारी हासिल है। चाहे केन्द्र सरकार उस ज़मीन की मालिक हो जिस पर झुग्गियाँ खड़ी हो या राज्य सरकार, झुग्गियों को तोड़ने से पहले उस इलाक़े का सर्वेक्षण करके यह सुनिश्चित करना ज़रूरी है कि कितने लोगों को पुनर्वासित करने का इन्तज़ाम करना है इसके लिए राज्य सरकार के महकमों जैसे पीडब्ल्यूडी और एमसीडी को डीयूएसआईबी को इसकी जानकारी मुहैया करना ज़रूरी है कि वह फ़लाँ इलाक़े में झुग्गियाँ तोड़ने वाले है और राज्य सरकार के अन्तर्गत आने वाले महकमे जैसे डीडीए या रेलवे चाहे तो यह काम खुद कर सकते हैं या फिर डीयूएसआईबी को सौंप सकते हैं। कोई सख़्त क़ानून न होने के कारण अकसर ऐसा देखा गया है कि कभी रेलवे या डीडीए झुग्गियों को तोड़ देता है और केन्द्र सरकार के इन विभागों से सूचना न मिलने की सूरत में राज्य सरकार का डीयूएसआईबी विभाग झुग्गीवासियों की पुनर्स्थापना में खुद को अक्षम बताकर बच निकलता है।

वर्ष 2013 में पीडब्ल्यूडी ने सोनिया गांधी कैम्प में झुग्गियों को तोड़ते हुए यह दलील दी कि क्योंकि झुग्गीवालों ने सरकारी ज़मीन पर अतिक्रमण कर आम जनता से रास्ते का अधिकार छीना है, इसलिए उनकी झुग्गियाँ तोड़ी जा रही हैं और डीयूएसआईबी को सूचना न दिये जाने के कारण झुग्गीवालों को कहीं और पुनर्वासित भी नहीं किया गया। जबकि 2010 के हाईकोर्ट फ़ैसले के अनुसार राइट ऑफ़ वे (रास्ते के अधिकार) के नाम पर सरकार किसी भी झुग्गीवाले को पुनर्वासन के अधिकार से वंचित नहीं रख सकती। 2010 में ही कोर्ट ने दिल्ली की एक केन्द्रीय सड़क पर रह रही गदर लोहिया समुदाय के झुग्गीवासियों को पुनर्वासन के हक़दार होते हुए एमसीडी को यह आदेश दिया था कि उनकी झुग्गियों को हटाने से पहले एमसीडी उनके पुनर्वासन की योजना बनाये। जर्मन दार्शनिक वाल्टर बेंजामिन ने क़ानून द्वारा की जाने वाली हिंसा के दो रूप बताये हैं - पहला वो जो क़ानून बनाने की प्रक्रिया में की जाती है और दूसरा वह जो उस क़ानून को अमल में लाने में की जाती है। एक तरफ़ 1957 के स्लम एक्ट से लेकर 1960 के बाद लाये गये अधिनियमों में कोई पारदर्शिता नहीं है, दूसरी तरफ़ कोर्ट के अनगिनत परस्पर विरोधी फ़ैसलों की रोशनी में झुग्गीवासी आयेदिन इस व्यवस्था के हाथों की जाने वाली हिंसा का शिकार बनते हैं।

2011 में डीयूएसआईबी ने दिल्ली को 2015 तक झुग्गी मुक्त शहर बनाने की योजना की घोषणा की थी जिसके तहत झुग्गी-झोपड़ी कलस्टरों की पुनर्स्थापना की जायेगी। यह घोषणा राजीव आवास योजना के तहत वित्तीय सहायता पाने के लिए की गयी थी, मगर सिर्फ़ घोषणाएँ कर देने से समस्याओं का समाधान नहीं हो जाता। पहले से निर्धारित 685 अनियमित झुग्गी कॉलोनियों को नियमित करने का काम अभी तक ठीक से शुरू भी नहीं किया गया है, ऐसे में दिल्ली को झुग्गी मुक्त शहर बनाने का मतलब है केवल झुग्गियों को तोड़ना और लोगों को बेघर करना। इस व्यवस्था में झुग्गी में रहने वाले लोगों को एक नागरिक के तौर पर नहीं, बल्कि सरकारी सम्पति पर अतिक्रमण करने वाले अपराधियों की नज़र से देखा जाता है।

आम जनता में भी यही अवधारणा प्रचलित है कि झुग्गीवालों की ज़िम्मेदारी सरकार की नहीं है जबकि सच इसके बिलकुल उलट है। झुग्गियों में रहने वाले लोगों को छत मुहैया कराने की ज़िम्मेदारी राज्य की होती है, अप्रत्यक्ष कर के रूप में सरकार हर साल खरबों रुपया आम मेहनतकश जनता से वसूलती है, इस पैसे से रोज़गार के नये अवसर और झुग्गीवालों को मकान देने की बजाय सरकार अदानी-अम्बानी को सब्सिडी देने में ख़र्च कर देती है। केवल एक ख़ास समय के लिए झुग्गीवासियों को नागरिकों की तरह देखा जाता है और वो समय होता है ठीक चुनाव से पहले। चुनाव से पहले सभी चुनावबाज़ पार्टियाँ ठीक वैसे ही झुग्गियों में मँडराना शुरू कर देती है जैसे गुड़ पर मक्खियाँ। चुनाव के समय तमाम नेता-मन्त्री झुग्गियों की जगह मकान देने का वादा करके झुग्गीवासियों को लुभाने का भरसक प्रयास करते हैं। और जीत जाने के बाद अपने वादों को भूलकर अपने आलीशान मकानों में चैन की नींद सोते हैं।

दिल्ली के वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र में ही पिछले 6 महीनों में 3 बार झुग्गियों पर बुलडोज़र चला दिये गये हैं कभी रेलवे द्वारा, कभी डीडीए तो कभी एमसीडी द्वारा। झुग्गियाँ तोड़ देने के बाद किसी भी सरकारी विभाग ने झुग्गीवालों की मदद के लिए कोई कार्रवाई नहीं की है। ऐसे में एक बड़ा सवाल उठता है कि केजरीवाल सरकार झुग्गीवासियों से किये अपने वादे के बाबत क्या कर रही है? क्या केजरीवाल सरकार को नहीं पता कि दिल्ली में झुग्गियों की समस्या कितनी बड़ी है और इस समस्या को सुलझाने के लिए सबसे पहले मौजूदा क़ानूनों में तब्दीली करने की ज़रूरत है। दिल्ली के व्यापारियों की समस्या सुलझाने के लिए तो केजरीवाल सरकार तुरन्त हरकत में आ गयी, तो फिर जब झुग्गियों में रहने वाले लोगों को बेघर किया जा रहा है तब यह आम आदमी कहाँ है? दिल्ली की मज़दूर मेहनतकश आबादी दिल्ली की चमक-धमक को बनाये रखने के लिए दिन-रात अपना ख़ून-पसीना एक करती है, उसके बावजूद उसे केवल दो जून की रोटी और सिर पर कच्ची छत नसीब होती है जिसे भी उससे कभी भी छीन लिया जा सकता है। यही है असली सच्चाई दिल्ली की चकाचौंध को ज़िन्दा रखने वाली मेहनतकश आबादी की ज़िन्दगी की।

अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे निहत्थे मज़दूरों पर ठेकेदार के गुण्डों ने बरसायीं गोलियाँ : हिमाचल प्रदेश स्थित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) मण्डी में हुए गोलीकाण्ड पर एक रिपोर्ट

हिमाचल प्रदेश के मण्डी ज़िले में स्थित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) के कमान्द परिसर में पिछले महीने 19 जून 2015 को अपनी जायज़ माँगों को लेकर शान्तिपूर्ण ढंग से प्रदर्शन कर रहे मज़दूरों पर ठेकेदार के गुण्डों द्वारा गोलियाँ चलायी गयीं। इस गोलीकाण्ड में जहाँ 14 मज़दूर गम्भीर रूप से घायल हो गये, वहीं दूसरी तरफ़ निहत्थे मज़दूरों पर गोलियाँ बरसाने वाले 4 बाउंसर भी मारे गये। पूरा घटनाक्रम कुछ इस प्रकार घटित हुआ कि आईआईटी कमान्द परिसर के निर्माण कार्य में लगे हुए तकरीबन 242 मज़दूर ठेकेदार द्वारा अपने वेतन तथा ईपीएफ़ का भुगतान न किये जाने के कारण पिछले कुछ समय से हड़ताल पर थे। मज़दूरों के अनुसार केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग ने जिस ठेकेदार को निर्माण कार्य पूरा करने का ठेका प्रदान किया था, वह कभी भी उनके मासिक वेतन का भुगतान तय समय पर नहीं करता था। इसके अलावा, उसने जनवरी 2014 से लेकर जून 2015 तक मज़दूरों का ईपीएफ़ जो तकरीबन 14 लाख के करीब बनता था, उसका भुगतान भी नहीं किया था। इसके अतिरिक्त, निर्माण क्षेत्र में ठेकेदार द्वारा तमाम श्रम क़ानूनों को ठेंगा दिखाते हुए बिना किसी सुरक्षा उपकरणों के मज़दूरों से ज़बरन 12-14 घण्टे काम करवाया जा रहा था। अपनी इन्हीं सब माँगों को लेकर मज़दूर इस घटना से तकरीबन दो सप्ताह पूर्व से ही काम बन्द करके हड़ताल पर थे। मज़दूरों की लगातार बढ़ रही एकता को तोड़ने के लिए ठेकेदार ने पंजाब से हथियारबन्द बाउंसरों को बुलाया था। वहाँ रहने वाली स्थानीय जनता के अनुसार ये तमाम गुण्डे सरेआम अपने हथियारों के दम पर लोगों को अकसर डराते-धमकाते रहते थे। कमान्द में लगातार बढ़ रहे तनाव तथा अपनी माँगों को लेकर मज़दूरों ने उपायुक्त से मुलाक़ात कर अपना ज्ञापन भी सौंपा था, तथा उन्हें इस बात से अवगत कराया था कि अगर प्रशासन जल्द ही कोई क़दम नहीं उठाता है तो वहाँ कोई भी अप्रिय घटना हो सकती है। परन्तु मज़दूरों के बार-बार चेतावनी दिये जाने के बावजूद भी सरकार और प्रशासन के कान पर जूँ तक न रेंगी। आख़िरकार 19 जून को जब मज़दूर ठेकेदार से बातचीत करने के लिए निर्माण स्थल पर पहुँचे तो वहाँ उसके द्वारा पहले से ही तैनात हथियारबन्द गुण्डों ने उनके साथ गाली-गलौज करना शुरू कर दिया। इस पर मज़दूरों ने जब अपना विरोध दर्ज कराया तो एकाएक गुण्डों ने उन पर गोलियाँ बरसानी शुरू कर दीं, जिसके चलते 14 मज़दूर गम्भीर रूप से घायल हो गये। अपने साथियों पर हुए इस जानलेवा हमले से मज़दूर गुस्से में आ गये तथा उन्होंने गुण्डों को घेर लिया। अपनी ग़लती का एहसास होने पर वे इधर-उधर भागने लगे, परन्तु पहाड़ी रास्तों का अभ्यस्त न होने के कारण उनमें से दो पाँव फिसलने के कारण खाई में जा गिरे जिसके चलते उनकी मौक़े पर ही मौत हो गयी।

बाक़ी बचे गुण्डों को मज़दूरों ने घेरकर पीटना शुरू कर दिया, जिस कारण वे गम्भीर रूप से घायल हो गये। इतना सब हो जाने के बाद सरकार और प्रशासन की कुम्भकरणी नींद टूटी और उन्होंने कमान्द में भारी संख्या में पुलिस फ़ोर्स को भेज स्थिति को नियन्त्रण में लिया। इन तमाम तथ्यों से साफ़ ज़ाहिर होता है कि मज़दूरों ने जो कुछ भी किया वह अपनी आत्मरक्षा में किया, परन्तु पुलिस ने फिर भी मज़दूरों पर दफ़ा 302 के तहत हत्या का मामला दर्ज कर दिया। इसके विपरीत, पुलिस ने न सिर्फ़ इस घटना के मुख्य आरोपी ठेकेदार को वहाँ से भाग जाने का पूरा मौक़ा दिया, बल्कि इलाज के बहाने इस घटना में घायल हुए गुण्डों को सरकारी सुरक्षा में चण्डीगढ़ स्थित पीजीआई अस्पताल में दाख़िल करवाया गया। जहाँ से अगले रोज़ ये तमाम अपराधी पुलिस की मौजूदगी के बावजूद फ़रार हो गये। ग़ौरतलब बात यह है कि इन तमाम गुण्डों पर पंजाब में हत्या, लूटमार जैसे कई संगीन मुक़दमे दर्ज हैं, परन्तु फिर भी हिमाचल पुलिस ने उनकी निगरानी के लिए सिर्फ़ कुछ कांस्टेबल तैनात किये हुए थे। इस पूरे प्रकरण में जो सबसे महत्वपूर्ण बात निकलकर सामने आयी है, वह यह है कि कमान्द कैम्पस के अन्दर स्थित जिस गेस्ट हाउस में ठेकेदार ने इन गुण्डों को ठहराया हुआ था, वहाँ से पुलिस चौकी की दूरी मात्र 50 मीटर है। पहले तो पुलिस और ज़िला प्रशासन वहाँ हथियारबन्द गुण्डों की उपस्थिति से ही पूरी तरह से इंकार करते रहे, परन्तु बाद में उसी स्थान में तलाशी के दौरान उन्हें भारी संख्या में हथियार बरामद हुए। इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि सरकार, पुलिस, और स्थानीय प्रशासन को वहाँ रह रहे इन हथियारबन्द गुण्डों की पूरी जानकारी थी, परन्तु फिर भी उन्होंने सब कुछ जानते हुए भी इन लोगों के ख़िलाफ़ कोई भी कारवाई नहीं की। बस जनता की आँखों में धूल झोंकने के लिए आनन-फ़ानन में दोषियों के ऊपर कड़ी कार्रवाई करने तथा मज़दूरों को जल्द से जल्द उनके बकाया वेतन तथा ईपीएफ़ का भुगतान कर देने की घोषणा कर दी। परन्तु न तो अब तक इस घटना के लिए ज़िम्मेदार ठेकेदार पर कोई कार्रवाई की गयी है, और न ही मज़दूरों को उनकी मेहनत की कमाई मिल पायी है। इससे साफ़ पता चलता है कि सरकार अब इस पूरे प्रकरण में मुख्य आरोपी ठेकेदार तथा मज़दूरों पर गोलियाँ चलाने वाले अपराधियों को बचाने में लगी हुई हैं।

दरअसल पिछले कुछ समय से हिमाचल प्रदेश की आम मेहनतकश जनता यहाँ चल रही विद्युत परियोजनाओं तथा अव्यवस्थित निर्माण कार्यों के ख़िलाफ़ रह-रहकर सड़कों पर उतर रही हैं। जिसका एक उदाहरण हमें अभी कुछ समय पहले किन्नौर में देखने को मिला, जहाँ जेपी कम्पनी के ख़िलाफ़ वहाँ की स्थानीय जनता तथा मज़दूरों ने अपनी माँगों को लेकर तकरीबन दो महीने लम्बा संघर्ष लड़ा था। मज़दूरों तथा आम जनता की आवाज़ को दबाने के लिए जहाँ एक तरफ़ क़ानून-व्यवस्था बनाये रखने के नाम पर सरकार ने 'वर्दीधारी' गुण्डों की फ़ौज बैठा रखी है, वहीं दूसरी तरफ़ कम्पनी तथा ठेकेदारों को हथियारबन्द निजी गार्ड रखने की भी खुली छूट दी हुई है। जैसाकि आमतौर पर होता आया है सरकार ने अब शान्ति-व्यवस्था बनाये रखने के नाम पर कमान्द स्थित आईआईटी कैम्पस में भारी संख्या में पुलिस तथा अर्धसैनिक बलों की तैनाती करने की घोषणा कर दी है। सरकार द्वारा उठाये गये इस क़दम का मुख्य उद्देश्य मज़दूरों को अपनी माँगों को लेकर एकजुट होने से रोकना है, ताकि भविष्य में होने वाले किसी भी तरह के मज़दूर आन्दोलन को आसानी से कुचला जा सके। अभी हाल ही के कुछ वर्षों में पूरे देश में मज़दूर अपने मूलभूत अधिकारों के लिए रह-रहकर आवाज़ उठा रहे हैं और हिमाचल की वादियाँ भी अब इससे अछूती नहीं रही हैं। परन्तु ये तमाम आन्दोलन एक सही क्रान्तिकारी लाइन के अभाव में अपनी तार्किक परिणति तक नहीं पहुँच पा रहे हैं। साथियो, इन तमाम घटनाओं से यह साबित हो चुका है कि सरकार (फिर चाहे वह किसी भी चुनावी पार्टी की सरकार हो) ने अब मज़दूरों द्वारा उठाये जाने वाले प्रतिरोध के हर स्वर को बर्बरता से कुचल डालने की पूरी तैयारी कर ली है। इसलिए अगर हमें अपने अधिकारों को हासिल करना है तो हमें अपने रिहाइशी इलाक़ों तथा काम करने के स्थानों पर अपने जुझारू क्रान्तिकारी संगठन खड़े करने होंगे, क्योंकि केवल तभी हम सरकार-पूँजीपतियों-पुलिस के इस गठजोड़ का सामना कर पायेंगे।

– बिगुल संवाददाता

आशा वर्कर्स और आँगनवाड़ी के कर्मचारियों ने किया दिल्ली विधाान सभा का घेराव !

दिल्ली की आशा वर्कर्स और आँगनवाड़ी के कर्मचारियों ने अपनी हड़ताल के 10वें दिन 16 जुलाई को मुख्यमन्त्री अरविन्द केजरीवाल के सिविल लाइंस स्थित आवास से विधानसभा तक चेतावनी रैली निकालकर विधानसभा का घेराव किया। इस चेतावनी रैली में करीब 500 कर्मचारियों ने हिस्सा लिया। इस चेतावनी रैली के ज़रिये आशा वर्कर्स और आँगनबाड़ी के कर्मचारियों ने केजरीवाल सरकार के समक्ष यह साफ़ कर दिया है कि जब तक उनकी माँगों को स्वीकार नहीं किया जाता, तब तक उनका संघर्ष जारी रहेगा। बिगुल मज़दूर दस्ता आशा वर्कर्स और आँगनवाड़ी के कर्मचारियों के इस संघर्ष में लगातार उनका समर्थन कर रहा है। ज्ञात हो कि 14 जुलाई को केजरीवाल सरकार का एक प्रतिनिधिमण्डल हड़तालकर्मियों से मिला था, पर सरकार के इन नुमाइन्दों ने दिलासा देने के अलावा कोई ठोस आश्वासन देना ज़रूरी नहीं समझा, जिसके बाद कर्मचारियों ने एकमत से यह तय किया कि वह एक चेतावनी रैली निकालकर केजरीवाल सरकार को यह चेता देंगे कि उन्हें कोरे दिलासे नहीं बल्कि ठोस कार्यवाही और अपनी माँगों की स्वीकृति चाहिए। आशा वर्कर्स और आँगनवाड़ी के कर्मचारियों ने आज यह घोषणा की कि अगर सरकार जल्द से जल्द उनकी माँगों की सुनवाई नहीं करती है तो अगली बार वह दिल्ली सचिवालय का घेराव करेंगे। बिगुल मजदूर दस्ता की तरफ़ से बात रखते हुए नितिन ने कहा की कि आशा वर्कर्स और आँगनवाड़ी के कर्मचारियों ने अब तक जिस बहादुरी के साथ अपना संघर्ष लड़ा है, उसी तरह जब तक हमारी माँगे स्वीकार नहीं कर ली जातीं, हमारा संघर्ष जारी रहेगा। हड़तालकर्मियों की माँग है कि उन्हें स्थायी किया जाये, उनकी आय की श्रेणी सुनिश्चित की जाये और प्रोत्साहन राशि की बजाय आय दी जाये, और इस आय का भुगतान हर महीने सुनिश्चित समय तक किया जाये, साथ ही सभी कर्मचारियों को पहचान पत्र दिया जाये।

– बिगुल संवाददाता

मालवणी शराब काण्ड ने दिखाया पुलिस–प्रशासन–राजनेताओं का विद्रूप चेहरा

विराट

17 जून को मुम्बई में मालाड़ के मालवणी इलाक़े में हुई ज़हरीली शराब की दुर्घटना सैकड़ों ग़रीब परिवारों पर कहर बनकर टूटी। किसी-किसी घर में तो दो-दो लोगों की जानें भी गयीं। सरकारी आँकड़े 106 लोगों के मरने की बात करते हैं लेकिन हक़ीक़त इससे काफ़ी अलग है। बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं द्वारा इलाक़े में सर्वे करने पर सामने आया कि असल में 150 से भी अधिक लोगों की मौतें हुई हैं। जिन लोगों की मौत घर पर या अस्पताल ले जाते समय हुई है, सरकारी आँकड़ों में ऐसी मौतों को शामिल नहीं किया गया है। सरकारी अस्पताल और पुलिस भी सही-सही आँकड़ा देने से कतरा रहे हैं। लोगों को राहत के नाम पर सरकार एक-एक लाख का मुआवज़ा दे रही है लेकिन यह पीड़ित परिवारों के साथ एक भद्दा मज़ाक़ ही है। राशन कार्ड आदि काग़ज़ात न होने के कारण बहुत से परिवारों को यह मुआवज़ा भी नहीं मिल पाया है। जिन लोगों को मुआवज़ा मिला भी है उनमें से लगभग आधे परिवार चेक लेकर हताशा में घूम रहे हैं क्योंकि चेक को डालने के लिए उनके पास अपने नाम का बैंक खाता नहीं है। काफ़ी लोग ऐसे भी हैं जिनकी इस दुर्घटना में जान नहीं गयी है लेकिन वे अपंग हो गये हैं – उनकी आँखों की रोशनी हमेशा के लिए चली गयी है; ऐसे लोगों को सरकार ने कोई मुआवज़ा नहीं दिया है।

विभिन्न चुनावी दलों के नेता घड़ियाली आँसू लिए बस्ती में घूम रहे हैं और सहायता के नाम पर दो-दो किलो आटा-चावल, 1 किलो चीनी अपने चुनाव चिह्न की चेपियाँ लगाकर बाँट रहे हैं और अपनी बेशर्मी की नुमाइश कर रहे हैं। मुख्यमन्त्री देवेन्द्र फड़नवीस योग करने और अमेरिका की यात्रा करने में व्यस्त हैं और राजधानी में इतनी बड़ी दुर्घटना होने पर पीड़ित परिवारों से मिलने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं है। ख़ुद को दलितों का रहनुमा बताने वाले "रैडिकल" संगठन बस्ती से लुप्त हैं, जबकि मरने वाले बहुसंख्यक लोग दलित पृष्ठभूमि से आते थे। जिस पुलिस के सहयोग से ज़हरीली शराब का पूरा नेटवर्क चलता था वह बस्ती में नशे को जड़ से उखाड़ फेंकने की कसमों के बड़े-बड़े बैनर लगा रही है। दूसरी ओर अवैध ठेकों के दोबारा शुरू होने की एक-दो ख़बरें आने लगी हैं। इलाक़े का विधायक असलम शेख़ फ़िलहाल हज यात्रा पर गया है और हादसा होने के एक महीने बाद तक भी वह या उसके नुमाइन्दे लोगों की सुध लेने नहीं पहुँचे हैं। इस घटना में विधायक किस हद तक संलिप्त रहा होगा, इसका अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि जो कुछेक लोग गिरफ़्तार हुए हैं, उनमें से एक सलीम शेख़, विधायक का ख़ास आदमी था और उसके चुनावी प्रचार के लिए मुख्य भूमिका निभाता था।

इस घटना से सरकारी अस्पतालों की व्यवस्था फिर से नंगी हो गयी है। शताब्दी अस्पताल जोकि बस्ती का सबसे निकटवर्ती सरकारी अस्पताल है, उसमें इस तरह की आपातस्थिति के लिए कोई सुविधा नहीं थी। लोगों को इलाज के लिए 10-10 घण्टे इन्तज़ार करना पड़ा। यदि सही समय पर इलाज मिल पाया होता तो शायद काफ़ी जानें बच जातीं। इन सभी मौतों के लिए सरकार, पुलिस प्रशासन व अस्पतालों की बदतर हालत सीधे तौर पर ज़िम्मेदार हैं।

अंजली ने इस हादसे में अपने पति माया हरिजन को खोया है। उनके पति गटर सफ़ाई आदि का काम करते थे।

अंजली ने बताया – "वो जब से गटर सफ़ाई का काम करने लगे तब से शराब पीना शुरू किया था। हादसे वाले दिन उन्होंने भी पी थी लेकिन वो पूरी तरह स्वस्थ थे व बाहर लक्ष्मीनगर चौराहे पर बैठे थे। सुबह 10 बजे वहाँ आये पुलिसकर्मियों ने जब यह पूछा कि उसने भी पी है या नहीं, तो उसने हाँ कर दी। इसके बाद उसको व अन्य 7 लोगों को पुलिस शताब्दी अस्पताल लेकर गयी जहाँ उसको दो इंजेक्शन दिये गये। शाम चार बजे तक उसकी हालत एकदम ठीक थी। इसके बाद शताब्दी अस्पताल के डॉक्टरों ने कहा कि अब इसको नायर अस्पताल लेकर जाओ क्योंकि वहाँ अच्छी मशीनें हैं जिससे इसका इलाज हो जायेगा। नायर अस्पताल तक जाते-जाते रात के 9.30 बज चुके थे। वहाँ ले जाने के बाद उन्होंने सिर्फ़ ग्लूकोज की बोतल चढ़ायी जिसके बाद मेरे पति का साँस फूलने लगा, उल्टी होने लगी। उसके बाद वो उसे आईसीयू लेकर गये जहाँ जाते ही उसकी मृत्यु हो गयी। अगर मेरे पति व उस जैसे कितने ही लोगों को अच्छा इलाज मुहैया करवाया जाता तो उनकी जान बच जाती, लेकिन शताब्दी व नायर अस्पताल के डॉक्टरों ने लोगों को बचाने में बिल्कुल भी ताक़त नहीं लगायी।"

मालवणी के पीड़ित परिवारों ने किया विरोध प्रदर्शन

प्रशासन और राजनेताओं की चुप्पी और बेशर्मी से नाराज़ पीड़ित परिवारों ने बिगुल मज़दूर दस्ता और यूनिवर्सिटी कम्युनिटी फ़ॉर डेमोक्रेसी एण्ड इक्वॉलिटी के सहयोग से 'मालवणी दारूकाण्ड संघर्ष समिति' गठित की। बिगुल मज़दूर दस्ता के नारायण खराड़े और पीड़ित परिवारों के 11 सदस्यों को लेकर 12 लोगों की इस समिति का गठन हुआ। समिति ने पीड़ितों की मुख्य माँगों के तौर पर हर पीड़ित परिवार को 10 लाख रुपये का मुआवज़ा, अपंग हुए लोगों को 5-5 लाख रुपये का मुआवज़ा, हर पीड़ित परिवार के एक सदस्य को पक्की सरकारी नौकरी, पीड़ित परिवारों को आवास की सुविधा उपलब्ध कराने की माँगें सामने रखीं। समिति के आह्वान पर 30 जून को आज़ाद मैदान पर विशाल प्रदर्शन आयोजित किया गया। प्रदर्शन में लोगों के सामने अपनी बात रखते हुए बिगुल मज़दूर दस्ता के सत्यानारायण ने कहा कि इतनी बड़ी दुर्घटना के बाद भी मुख्यमन्त्री का लोगों से मिलने न आना दिखाता है कि प्रशासन को जन की कितनी चिन्ता है। उन्होंने कहा कि हमें अपनी माँगों को मनवाने के लिए लम्बा संघर्ष चलाना होगा। सत्यानारायण ने कहा कि दो-चार छोटे-मोटे डीलरों और कुछ पुलिसकर्मियों को दोषी बताकर सरकार इस रैकेट में संलिप्त बड़े अधिकारियों और मन्त्रियों को बचाने का काम कर रही है। उन्होंने कहा कि इस पूरी घटना की उच्चस्तरीय जाँच होनी चाहिए और सभी दोषी हत्यारों पर कड़ी कार्रवाई की जानी चाहिए। बिगुल मज़दूर दस्ता के नारायण ने अपनी बात में कहा कि यह पूरी दुर्घटना पुलिस-प्रशासन और सरकार के साथ ही पूरी व्यवस्था को भी कठघरे में खड़ा करती है। उन्होंने कहा कि ग़रीब मज़दूर की ज़िन्दगी का इस बर्बर व्यवस्था में कोई स्थान नहीं है और यह व्यवस्था मज़दूरों को केवल अमीरों को मुनाफ़ा देने वाली मशीन ही समझती है। उन्होंने कहा कि ग़रीबों के लिए अस्पतालों की लचर स्थिति दिखाती है कि सरकार को हमारे स्वास्थ्य और ज़िन्दगी की कितनी चिन्ता है। नारायण ने इस घटना के सन्दर्भ में पुलिस-प्रशासन व सरकार की घृणित भूमिका पर विस्तार से बात रखी। मुम्बई का "प्रगतिशील" दायरा जिसमें तमाम संशोधनवादी और ख़ुद को दलितों का रहनुमा बताने वाले संगठन आते हैं, इस प्रदर्शन से भी ग़ायब ही रहा। अन्त में पीड़ितों ने मुख्यमन्त्री देवेन्द्र फड़नवीस और आबकारी मन्त्री एकनाथ खड़से को अपना ज्ञापन सौंपा और तय किया कि संघर्ष को आगे बढ़ाते हुए इलाक़े के विधायक और सांसद को घेरा जायेगा।

पीड़ितों की लाशों पर भी रोटियाँ सेंकने से राजनीतिक दल बाज नहीं आये। अपने आपको दलित हितों का नुमाइन्दा घोषित करने वाली रिपब्लिकन पार्टी ऑफ़ इण्डिया (आठवले) के प्रमुख रामदास आठवले ने अपने ही गठबन्धन की सरकार पर दबाव बनाकर लोगों के लिए राहत हासिल करने की बजाय दो-चार किलो राशन और बिस्कुट बाँटकर पीड़ितों का मज़ाक़ बनाया। बेशर्मी की हद तो यह थी कि गम की ऐसी घड़ी में भी राशन के छोटे-छोटे लिफ़ाफ़ों पर उन्होंने अपनी पार्टी के बड़े-बड़े स्टिकर लगाकर बाँटे।

अमित जाधव ने कहा कि "उनके पिता पूरी तरह हट्टे-कट्टे थे पर ज़हरीली शराब ने उनकी ज़िन्दगी छीन ली। अस्पताल में उनको सिर्फ़ बेड पर लेटाकर रखा गया व कोई उपचार नहीं दिया गया। मृत्यु के बाद रातभर परिवार के लोगों को शव के लिए इन्तज़ार करवाया गया।"

दीपिका इन्दुलकर के पति सिद्धेश की ज़िन्दगी भी ज़हरीली शराब ने छीन ली। दीपिका ने कहा – "अगर पुलिस पहले ही अपने कर्तव्य का पालन करती तो इतने सारे लोगों को अपनी ज़िन्दगी नहीं गँवानी पड़ती। पुलिस सिर्फ़ हफ़्ता वसूलने में मशगूल रहती है। बेघर लोगों को एक झोपड़ी बनानी हो तो भी ये लोग हफ़्ता वसूलने पहुँच जाते हैं। पैसे नहीं देने पर झोपड़ी तोड़ देते हैं। लेकिन इस तरह के अवैध धन्धों को चलने देते हैं। इस पूरे काण्ड में डॉक्टरों ने भी लोगों को बचाने के लिए पूरी तत्परता नहीं दिखायी।"

श्रीमती भालेकर ने कहा – "पति के अस्पताल में दाख़िल होने पर मानसिक तनाव के कारण मैं भी वहाँ बेहोश होकर गिर पड़ी जिसके बाद मुझे ऑक्सीजन मास्क लगाकर लेटा दिया गया। जिन लोगों को ज़हरीली शराब का असर था, उन्हें भी सिर्फ़ वैसा ही मास्क लगाकर लेटा रखा था। इस तरह सिर्फ़ ऑक्सीजन मास्क लगाकर इलाज का नाटक शताब्दी अस्पताल के डॉक्टरों ने किया।"

समाजवादी रूस और चीन ने नशाख़ोरी का उन्मूलन कैसे किया?

तजिन्दर

नशाख़ोरी एक बीमारी के रूप में लम्बे समय से हमारे समाज में मौजूद रही है। आज यह कुष्ट रोग की तरह एक पूरी पीढ़ी को निगल रही है। पंजाब की लगभग 73.5 प्रतिशत युवा आबादी नशों की आदी है। पंजाब के गाँवों के लगभग 76.47 प्रतिशत लोग हर रोज़ शराब पीते हैं। विश्व सेहत संस्था की रिपोर्ट के अनुसार हर साल संसार में 30 लाख से ज़्यादा लोग शराब के प्रयोग से मर जाते हैं।

नशाख़ोरी को रोकने की कोशिशें समय-समय पर की जाती रही हैं। लेकिन समाज लगातार इस दलदल में गहरे से गहरा धसता चला जा रहा है। अलग-अलग मुल्कों की सरकारें, समाजसेवी संस्थाएँ और मुनाफ़े पर खड़ी मौजूदा व्यवस्था की सेवा में लगे बुद्धिजीवियों द्वारा इस समस्या के हल के लिए इस व्यवस्था में रहते हुए यथा-सम्भव ढंग सुझाया और अपनाया जा चुका है, लेकिन ये सभी तरीक़े असफल रहे हैं।

लेकिन इतिहास में ऐसा सुनहरा दौर भी रहा है जब नशाख़ोरी और वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक बीमारियों को पूरी तरह जड़ से मिटा दिया गया था। यह दौर था रूस और चीन का समाजवादी दौर। मानवीय इतिहास का वह समय जब सदियों से लूटे जा रहे सर्वहारा वर्ग की सत्ता स्थापित हुई। जिसने न सिर्फ़ आर्थिक तरक्की के नये से नये शिखरों को छूआ, बल्कि लूट और मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था के द्वारा पैदा की गयी सामाजिक बीमारियों को भी जड़ से उखाड़ फेंका। इस लेख में हम रूस और चीन के समाजवादी समय के दौरान चलायी गयी नशा विरोधी लहर की चर्चा करेंगे, जिससे हम आज इस समस्या के आस-पास सरकारों की दोगली नीति, साम्राज्वादी फ़ण्ड पर चलने वाले एनजीओ और नशे के आदी और बेचने वालों को दिये जा रहे धार्मिक और नैतिक उपदेशों की धुँध को साफ़ कर सकें।

रूस में शराबख़ोरी के ख़िलाफ़ लहर

रूस में अक्तूबर 1917 क्रान्ति से पहले और बाद में शराबख़ोरी, वेश्यावृत्ति, औरतों की ख़रीदो-फ़रोख़्त, भ्रूण हत्या आदि विरोधी लहर की चर्चा अमेरिकी पत्रकार डायसन कार्टर की किताब 'पाप और विज्ञान' में मिलती है। डायसन कार्टर ने ख़ुद क्रान्ति के बाद रूस में जाकर बदली हुई हालत का अध्ययन किया और साथ ही उस समय अमेरिका और यूरोप में इन समस्याओं के हल के लिए अपनाये जा रहे (असफल) तरीक़ों की भी चर्चा की है। हम अपनी चर्चा शराबख़ोरी के ख़िलाफ़ लहर तक ही सीमित रखेंगे।

क्रान्ति से पहले का दौर :

अक्तूबर क्रान्ति से पहले रूस में शराब आम जीवन का हिस्सा थी। लगभग सारा रूस ही शराब पीता था। सड़कों पर शराब से लड़खड़ाते हुए लोगों को आम ही देखा जा सकता था। शराबख़ोरी को रोकने की कोशिशों का सिलसिला 1819 में शुरू होता है। ज़ार सरकार ने नशाख़ोरी के ख़िलाफ़ जो क़दम उठाये, वे थे :

शराब को सरकारी कण्ट्रोल में रखना : इससे शराब की बिक्री में तो कोई कमी नहीं आयी, लेकिन इससे ज़ार सरकार की आमदनी में ज़रूर इज़ाफ़ा हो गया। यह चलन आठ साल तक क़ायम रहा, इस पर अमल करना मुश्किल होने के कारण इसको दोबारा निजी हाथों में सौंप दिया गया।

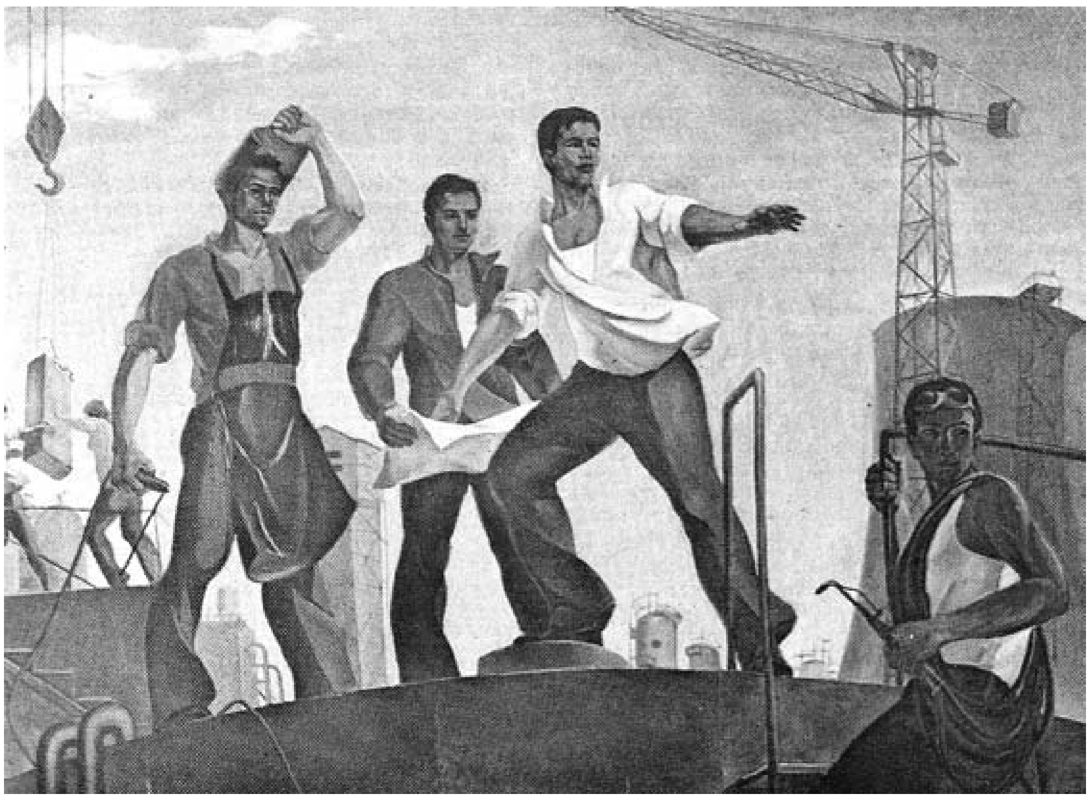

सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण के दौर की एक पेंटिंग

शराब पर टैक्स : इसके पीछे ज़ार सरकार का मक़सद था कि आम नागरिकों के लिए शराब महँगी हो जाये, लेकिन इससे मुनाफ़ा ज़रूर आता रहे। इस तरीक़े से भी शराब की बिक्री में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा, क्योंकि लोगों ने रोटी पर ख़र्च घटाकर शराब पर करना शुरू कर दिया।

लाइसेंस प्रबन्ध : तीस साल तक रूस में शराबख़ोरी लगातार बढ़ती रही। पादरियों के उपदेशों के बावजूद रूस के लोगों ने शराब पीना जारी रखा। बाद में लाइसेंस प्रबन्ध लागू कर दिया गया, जिससे दुकानों की संख्या घटायी जा सके। बाद के सालों में रूस में शराब की दुकानों की संख्या तो 2,50,500 से 1,15,000 रह गयीं लेकिन इससे शराब की बिक्री और भी बढ़ गयी।

नशा रोकू संगठन : ज़ार सरकार द्वारा नशाख़ोरी को रोकने के लिए जो क़दम उठाये जा रहे थे, उनके पीछे चालक शक्ति रूस के उद्योगपति थे। क्योंकि नशे की हालत में मज़दूर फ़ैक्टरियों में काम करते थे जिससे पैदावार को भारी नुक़सान होता था। दूसरी तरफ़ जागीरदारों के हिमायती ज़ार के चचेरे भाई प्रिंस अलेक्सान्द्र (जो ख़ुद भी एक अमीर जागीरदार था) का मानना था कि नशे की हालत में किसान भी खेती की पैदावार को भारी नुक़सान पहुँचाते थे। इस दिक्कत के चलते वह ज़ार से अलग हो गया और उसने एक नशा रोकू संगठन बनाया। नशाख़ोरी को रोकने के लिए इस संगठन ने जो तरीक़े अपनाये, वे थे :

इस संगठन ने बड़े स्तर पर पार्क, बाग, आरामघरों का प्रबन्ध किया। मनोरंजन केन्द्र, नाटक घर आदि बनाये। ऐसे ज़्यादातर स्थानों पर लोगों का कोई पैसा नहीं ख़र्च होता था। इन स्थानों पर भाषण दिये जाते जिनमें शराब के नुक़सान से सम्बन्धित वैज्ञानिक दलीलें दी जातीं। 1903 तक इस संगठन की सरगर्मियाँ शिखर पर थीं। लेकिन इस सबका जो नतीजा निकला, वह यह था कि लोग मुफ़्त में इन स्थानों पर जाते खाते-पीते, नाटक देखते और बचे हुए पैसों को शराब पर ख़र्च कर देते।

शराब पर मुकम्मल पाबन्दी : नशा विरोधी लहर के शुरू होने से 1914 तक रूस में वोदका की मात्रा 500 प्रतिशत से भी ज़्यादा बढ़ गयी। स्कूलों में 80 प्रतिशत से ज़्यादा बच्चे वोदका पीते थे। इसी समय एक तरफ़ रूस के पूर्वी मोर्चे पर जंग छिड़ गयी और दूसरी तरफ़ फ़ैक्टरियों और खेतों की पैदावार नीचे गिर रही थी। रूस के फ़ैक्टरी मालिकों ने ज़ार सरकार पर नशाख़ोरी को रोकने के लिए दबाव और बढ़ा दिया। अत: 1916 में ज़ार सरकार ने इस समस्या से निपटने के लिए रातो-रात शराब पर मुकम्मल पाबन्दी लगा दी। शराब बेचने और बनाने के स्थानों को बरबाद कर दिया गया।

इसका निष्कर्ष यह निकला कि 1916 के शुरुआती महीनों में तो लोगों ने शराब को हाथ नहीं लगाया। लेकिन अचानक ही पूरे का पूरा रूस शराब में डूब गया। एक तरफ़ जंग में हो रही मौतें और दूसरी तरफ़ ग़रीबी, बदहाली और भुखमरी। इस सबसे बचने के लिए सभी लोग शराब की तरफ़ भागे। रूस के घर-घर में ग़ैर-क़ानूनी शराब बनायी जाने लगी। लोगों ने अनाज को शराब में तब्दील करना शुरू किया, ताकि इसको बेचकर कुछ पैसे कमाये जा सकें।

हमने ऊपर देखा कि ज़ार सरकार के द्वारा नशाख़ोरी को रोकने के लिए अपनाये गये ढंग-तरीक़ों का नतीजा उल्टा ही निकला। अब हम अक्तूबर 1917 के बाद के सोवियत समाजवादी समय के दौरान अपनाये गये ढंग-तरीक़ों की बात करेंगे, जिससे इन दोनों में फ़र्क़ करते हुए नशाख़ोरी की समस्या को जड़ से समझा जा सके।

क्रान्ति के बाद का दौर

अक्तूबर 1917 क्रान्ति के बाद रूस में मज़दूरों की सत्ता क़ायम हुई। निजी मालिकाने पर आधारित व्यवस्था को ख़त्म करके समाजवादी व्यवस्था को खड़ा किया गया। लेकिन उस समय रूस में अकाल की हालत थी। लोग अनाज को मण्डी में पहुँचाने की जगह शराब बनाने के लिए इस्तेमाल कर रहे थे। दूसरा इस तरह बनायी जा रही शराब बहुत ज़हरीली थी। सोवियत सरकार के लिए सबसे पहले यह ज़रूरी था कि ज़हरीली शराब की बिक्री को रोका जाये और अनाज की समस्या को हल किया जाये। सोवियत अधिकारियों ने सबसे पहले यह किया कि आलू से शराब बनाना क़ानूनी घोषित कर दिया।

सोवियत सरकार ने अब तक शराबख़ोरी के ख़िलाफ़ चली लहरों की मौजूदा रिपोर्टों और जानकारियों का अध्ययन किया। इन तथ्यों की छानबीन के बाद सोवियत अधिकारियों ने शराबख़ोरी की समस्या की जाँच-पड़ताल का काम नये सिरे से अपने हाथ में लिया। इस जाँच-पड़ताल के दौरान यह सामने आया कि रूस में शराबख़ोरी की समस्या सामाजिक और आर्थिक समस्या के साथ जुड़ी हुई है। लोग शराब की तरफ़ उस समय दौड़ते हैं जब वे अपने आपको ग़रीबी, भुखमरी, बेकारी जैसी समस्याओं से घिरा हुआ देखते हैं। उनको अपने दुख-तकलीफ़ों को भूलने का एक ही हल नज़र आता था – शराब। दूसरा इसको प्रोत्साहन इसलिए दिया जाता था कि सरकार इससे टैक्सों के द्वारा भारी लाभ कमा सके। ज़ार सरकार की कुल आमदनी का चौथा हिस्सा शराब से आता था।

इस पूरी समस्या के साथ निपटने के लिए सोवियत सरकार ने जो ठोस क़दम उठाये वे थे :

घरेलू और ज़हरीली शराब बनाने वालों का सफ़ाया : सोवियत अधिकारियों ने घरेलू शराब बनाने वालों को मण्डी में से बाहर करने के लिए शराब पर से टैक्स हटा दिया और परचून शराब की क़ीमत घटा दी। इसके साथ ही ऐसे तथ्य भी प्रकाशित किये गये, जिनसे पता चलता था कि ज़ार सरकार की शराब के व्यापार में कितनी हिस्सेदारी थी। इससे लोग यह समझ गये कि नयी बनी सोवियत सरकार शराब से लाभ नहीं कमाना चाहती। शराब की क़ीमतों में कमी के कारण लोगों में ख़ुशी की लहर थी। डायसन कार्टर के शब्दों में – "वह दिन ख़ुद-ब-ख़ुद राष्ट्रीय त्योहार का दिन बन गया था। उस दिन लोगों ने जी भर कर नयी, सस्ती, बढ़िया किस्म की वोदका पी। लेकिन इसके साथ ही हुआ यह कि घरेलू और ग़ैरक़ानूनी शराब बनाने वालों का मुकम्मल सफ़ाया हो गया।

शराब की बिक्री से सम्बन्धित नियम : शराब को सस्ती करने के बाद सोवियत अधिकारियों ने इसकी बिक्री सम्बन्धित कुछ नियम बनाये। ये नियम थे : फ़ैक्टरियों के नजदीक शराब नहीं बेची जायेगी, छुट्टियाँ और तनख़्वाह वाले दिन भी वहाँ शराब नहीं बिकेगी, कोई भी नौजवानों या नशा किये लोगों को शराब बेचेगा तो उसे कड़ी सज़ा दी जायेगी।

शराबख़ोरी के ख़िलाफ़ प्रचार मुहिम : रूस के एक कोने से दूसरे कोने तक नशाख़ोरी के ख़िलाफ़ प्रचार मुहिम चलायी गयी। शराबख़ोरी के ख़िलाफ़ इस नयी वैज्ञानिक लहर के दौरान लोगों को अल्कोहल से

(पेज 9 पर जारी)

समाजवादी रूस और चीन ने नशाख़ोरी का उन्मूलन कैसे किया?

(पेज 8 से आगे)

सम्बन्धित बड़े स्पष्ट तरीक़े से वैज्ञानिक तथ्य बताये गये। उनको बताया गया कि ज़्यादा शराब पीने से दिमाग़ की नसों को गहरा नुक़सान पहुँचता है। लोगों को बताया गया कि शराब पीना कोई ज़रूरी नहीं। रूस के लोगों तक इन तथ्यों को नाटक-घरों और टेलीविज़न जैसे नये-नये तरीक़ों से पहुँचाया गया। यह तथ्य लोगों के लिए सिर्फ़ भाषण मात्र ही नहीं थे। क्योंकि रूस में अब हालात बदल चुके थे। अब रूस के लोगों को पता था कि उनकी अपनी सत्ता क़ायम हो चुकी है और उनके द्वारा की गयी पैदावार जागीरदारों और फ़ैक्टरी मालिकों के मुनाफ़े के लिए नहीं बल्कि पूरे समाज के साझे हितों के लिए हो रही है। इसलिए शरीर पर अल्कोहल के प्रभाव के साथ-साथ लोगों को यह भी बताया गया कि उनके शराब पीने से देश के निर्माण पर क्या प्रभाव पड़ता है। खेतों, कारख़ानों और खानों में काम करने वालों को बताया गया कि शराब पीने से उनके काम पर क्या प्रभाव पड़ता है। लोगों को शराब छोड़ने के लिए न तो कोई नैतिक उपदेश दिये गये और न ही शराब पीने वालों को पापी के रूप में देखा गया। हाँ, उनको समाज को नुक़सान पहुँचाने वालों के रूप में ज़रूर पेश किया जाता था।

सामाजिक दबाव : रूस में ऐसे पियक्कड़ भी थे जिन्होंने वोदका की 9 आने की बोतल के लिए शराबख़ोरी के ख़िलाफ़ प्रचार से कान बन्द किये हुए थे। इन पियक्कड़ों के लिए सोवियत अधिकारियों ने अलग विधि को अपनाया। यह विधि थी सामाजिक दबाव। जिन जगहों पर शराबख़ोरी की समस्या गम्भीर थी, उन्हीं जगहों पर शराब-विरोधी केन्द्र क़ायम किये गये। जब भी कोई ऐसा पियक्कड़ मिलता तो उसे इस केन्द्र में पहुँचाया जाता। अच्छी तरह नहलाकर कुछ दिन तक उसकी देखभाल की जाती और फिर उसका नाम, पता और काम की जगह के बारे जानकारी लेने के बाद छोड़ दिया जाता। फिर जहाँ वह काम करता था, वहाँ से मज़दूर सभा को उसकी पूरी रिपोर्ट भेज दी जाती। ऐसे लोगों के साथ निपटने के लिए ख़ास समितियाँ बनायी गयी थीं। जब वह शराबी दोबारा काम पर पहुँचता तो उसे स्वागत कर रहे समिति के लोग मिलते जिनके पास शराब की बोतल के साथ उस शराबी का व्यंग्य चित्र होता। शराबी अगर दोबारा अपनी हरकत दोहराता तो उसकी और भी बेइज़्ज़ती की जाती। कुछ ज़्यादा ही ढीठ शराबियों के ख़िलाफ़ सख़्त अनुशासन भी लागू किया जाता।

यह ढंग बहुत कारगर सिद्ध हुआ क्योंकि अब शराबियों पर पूरा सामाजिक दबाव था। उनको डर था कि लोग उसे देश की तरक्की के रास्ते में पत्थर कहेंगे।

खाने-पीने की जगहों पर शराब : सोवियत मनो-विशेषज्ञों के द्वारा सुझाये गये ढंग के आधार पर खाने-पीने की जगहों में शराब का प्रयोग बढ़ाने के लिए एक लहर चलायी गयी। देखने को यह शराब को प्रोत्साहन देने वाला क़दम लगता है, लेकिन इसके पीछे वैज्ञानिक कारण थे। एक यह कि लोग उन शराब के अड्डों पर शराब पीना छोड़ दें जहाँ सिर्फ़ शराब ही मिलती थी। क्योंकि ख़ालिस शराब पीना हानिकारक होता है। दूसरा पुराने तजुर्बों से यह साबित हो चुका था कि लोग ग़रीबी के कारण ही शराब की तरफ़ भागते थे। उनको शराब और खाने में से किसी एक को चुनना पड़ता था और वह अक्सर शराब को प्राथमिकता देते थे।

सोवियत सरकार द्वारा बनाये गये नये क़ानून के अन्तर्गत शराब सिर्फ़ ऐसे खाने-पीने के घरों में ही मिलती थी, जहाँ परिवार भोजन करते थे और पूरा घरेलू वातावरण होता था। इससे लोगों के व्यवहार और आदतों में सुधार हुए। लोग अब शराब कम पीते थे, क्योंकि साथ खाना भी खाना होता था। इस ढंग से सोवियत रूस में शराबख़ोरी काफ़ी तेज़ी के साथ घटी।

सोवियत रूस की नशाख़ोरी के ख़िलाफ़ लहर से 20 साल बाद के हालात

डायसन कार्टर और उसकी पत्नी सोवियत रूस में शराबख़ोरी से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन करने गये तो उन्होंने शराबख़ोरी के ख़िलाफ़ लहर के बाद की हालत को इस तरह बयान किया है –

"हमने देखा कि मेहमान का स्वागत करने के लिए आमतौर पर जो लोग आये होते वह पानी का गिलास या फलों के रस का गिलास हाथ में ले लेते। बाद में जब खाना परोसने वाले अलग-अलग किस्म के पेय पदार्थ लाते तो लोग साफ़ इशारा कर देते कि वह या तो बीयर या हल्की किस्म की शराब लेंगे।"

... "हमने भोजनालयों और छोटे-बड़े होटलों में भोजन किया। इनमें से लगभग आधे में शराब पेश की गयी। हमने तरह-तरह के हज़ारों सोवियत नागरिकों को खाते-पीते देखा। लेकिन, एक बार भी हमने खाना खाते समय या सड़कों पर चलते समय किसी व्यक्ति को नशे में झूलते नहीं देखा।"

..."बीस-तीस साल की उम्र के ज़्यादातर लोग वहाँ किसी ख़ास समय पर ही शराब पीते हैं। बहुत से तो कभी अल्कोहल छूते भी नहीं।"

समाजवादी चीन ने नशाख़ोरी का उन्मूलन कैसे किया?

1949 की क्रान्ति से पहले चीन के लोग ग़रीबी, बदहाली में अपनी ज़िन्दगी व्यतीत कर रहे थे। मुट्ठीभर जागीरदारों, जंगी सरदारों और उपनिवेशवादियों द्वारा चीन के लोगों को बुरी तरह लूटा जाता था। क्रान्ति से पहले नशाख़ोरी की हालत यह थी कि 7 करोड़ लोग अफ़ीम, मॉर्फ़िन और हेरोइन के आदी थे। भूखे ग़रीब लोग अपनी दुख-तकलीफ़ों से निजात पाने के लिए अफ़ीम का सहारा लेते थे। दूसरी ओर अमीर और जागीरदार अपना ख़ाली समय बिताने के लिए नशा करते थे। हालत यह थी कि नशे को छोटी-छोटी बोतलों में भरकर शहर में हर नुक्कड़ पर आइसक्रीम की तरह बेचा जाता था। इस सबका नतीजा यह था कि लोग नशे के लिए अपने बच्चों तक को बेच रहे थे, महिलाओं को वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर किया जाता था।

चीन में नशाख़ोरी कैसे शुरू होई

चीन पर नशा यूरोप और अमेरिका के उपनिवेशवादियों द्वारा थोपा गया था। ब्रिटेन की सरकार के द्वारा तो चीन को अफ़ीम का निर्यात जबरन कबूलने और चीन में अफ़ीम को क़ानूनी करने के लिए 1839 में जंग भी थोपी गयी, जिसे प्रसिद्ध 'अफ़ीम जंग' के नाम से भी जाना जाता है। ब्रिटेन की तरफ़ से बड़े स्तर पर चीन में अफ़ीम का निर्यात किया गया जिससे चीन में से पूँजी को बाहर निकाला जा सके। चीन के लोगों को अफ़ीम का आदी बनाया गया, जिससे अफ़ीम से पैदा हुए मुनाफ़े को दोबारा चीन के लोगों को गुलाम करने के लिए इस्तेमाल किया जा सके। यह उस तरह ही था जैसे अमेरिका में राष्ट्रपति रीगन काल के दौरान सीआईए के द्वारा कई टन कोकीन अमेरिका में लायी गयी। अमेरिका की ग़रीब बेरोज़गार आबादी, जिसके लिए जीते रहने और ज़रूरतों को पूरा करने के लिए कोई रास्ता नहीं बचा था, कोकीन की बाढ़ में बह चले। बाद में अमेरिकी सरकार ने 'नशे के ख़िलाफ़ जंग' के नाम पर इन लोगों, ख़ासतौर पर काले लोगों पर अत्याचार का कहर बरपाना शुरू कर दिया जिसको 'क्रैक कोकीन महामारी' भी कहा जाता है। दूसरी ओर अमेरिकी सरकार कोकीन से हो रहे मुनाफ़े को निकारागुआ की साम्यवादी सरकार के ख़िलाफ़ गुप्त जंग को आर्थिक मदद देने के लिए इस्तेमाल कर रही थी।

ऊपर दिये गये तथ्यों से यह सत्य भी दिन के उजाले की तरह साफ़ है कि मौजूदा व्यवस्था नशाख़ोरी को ख़त्म नहीं कर सकती।

चीन में नशाख़ोरी के ख़िलाफ़ लहर

चीन में नशे की पैदावार, बिक्री और प्रयोग को रोकने के लिए जनता की भागीदारी की विधि को अपनाया गया। नशे के आदी लोगों को नशा छोड़ने के लिए प्रेरित किया गया। नशा छोड़ चुके लोगों, उनके परिवार वालों, स्कूल के बच्चों और अख़बार, रेडियो इन सबको नशा-विरोधी लहर के लिए एकजुट किया गया।

दूसरी ओर क्रान्तिकारियों के द्वारा लोगों को नशे का व्यापार ख़त्म करने के लिए संगठित किया गया जिससे इसकी पूर्ति घटायी जा सके। नशे की पूर्ति घटने से इसके आदी लोगों के लिए हमेशा नशे में रहना मुश्किल हो गया। नशाख़ोरी के ख़िलाफ़ चली इस लहर में, जिसमें हर वर्ग के लोगों की सक्रिय भूमिका थी, वे पुरानी व्यवस्था द्वारा पैदा की गयी बीमारी को जड़ से मिटाने के लिए एकजुट हो गये थे। नशाख़ोरी के ख़िलाफ़ इस संघर्ष ने एक लोक लहर का रूप धारण लिया था।

चीन की सरकार ने नशाख़ोरी से निपटने के लिए दो तरह की नीति अपनायी : लोगों को बताया गया कि नशे के आदी पुरानी लूट पर आधारित व्यवस्था के शिकार हैं, इसलिए उनको नशे के जाल में से निकलने में मदद की जाये। नशा बेचने के धन्धे में लगे ग़रीब लोगों को भी इस व्यापार में से निकलने के लिए बेहतर बदलाव दिया गया और नशा-विरोधी लहर में शामिल होने के लिए प्रेरित किया गया। किसी भी व्यक्ति से नशा छुड़ाने के लिए न तो ज़बरदस्ती की गयी और न ही सज़ा दी गयी। लोगों को नशा छोड़ने के लिए पूरा समय दिया। नशा छोड़ने के लिए उसे परिवार के साथ-साथ पूरे समूह का सहयोग मिलता था।

नशा बेचने वाले बड़े व्यापारी, जो लोगों की दुख-तकलीफ़ों से लाभ कमा-कमाकर अमीर बन रहे थे,के लिए क्रान्तिकारियों के द्वारा अलग नीति अपनायी गयी। उनको 'लोगों के दुश्मन' की सूची में रखा गया। उनको हज़ारों उन लोगों के सामने पेश किया गया जिन लोगों की ज़िन्दगी ऐसे लोगों ने तबाह की थी। ज़्यादातर अपराधियों को उम्र कैद की सज़ा दी गयी और कुछ ऐसे अपराधी जिनके अपराध माफ़ी योग नहीं थे, को मौत की सज़ा दी गयी।

1951 आते-आते उत्तरी चीन में नशाख़ोरी पूरी तरह ख़त्म कर दी गयी। दक्षिणी चीन में इस पर क़ाबू पाने में लगभग एक या दो साल का समय और लगा।

1953 में रूस में स्तालिन और 1976 में चीन में माओ की मौत के बाद पूँजीवाद की पुनर्स्थापना हो गयी। लूट पर आधारित व्यवस्था फिर से क़ायम हो गयी। इसके साथ ही यह व्यवस्था नशाख़ोरी जैसी अपनी, पुरानी बीमारियों को भी ले आयी। लेकिन रूस और चीन के समाजवादी दौर के तजुर्बों ने यह साबित किया कि यदि मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था को ख़त्म करके क्रान्तिकारी ढाँचा खड़ा किया जाये जिसके केन्द्र में मानव हो, न कि लाभ तो लोगों की ताक़त को आर्थिक बुलन्दियों को छूते हुए एक सेहतमन्द समाज सृजन करने की तरफ़ मोड़ा जा सकता है।

क्या आपने ये बिगुल पुस्तिकाएँ पढ़ी हैं?

चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही
भारतीय पूँजीवादी जनतन्त्र की एक नंगी और गन्दी तस्वीर
रु. 5.00

नवउदारवादी अर्थनीति के 18 वर्ष – भारत की तरक्की के दावों के ढोल की पोल
समृद्धि के तलघर में नर्क का अँधेरा
रु. 5.00

फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?
– अभिनव
रु. 20.00

"अच्छे दिनों" की असलियत पहचानने में क्या अब भी कोई कसर बाक़ी है?

(पेज 1 से आगे)

बेरोज़गार हों, करोड़ों बेघर हों, और हज़ारों बेगुनाह जेलों में सड़ रहे हों – उनमें से किसी के लिए इनकी "मानवीय भावना" नहीं जागती, मगर एक अरबपति भगोड़े अपराधी ललित मोदी की मदद के लिए विदेश मंत्री को मानवीय आधार याद आ जाता है! इस झूठ के बहाने यह दलाल ललित मोदी विदेशों घूम-घूमकर गुलछर्रे उड़ाता है और इस ऐयाशी की तस्वीरें भी इण्टरनेट पर डालता है! इस कदर नंगे हो जाने के बाद शायद शर्म चली ही जाती है। इसलिए भाजपा के तमाम नेता-मन्त्री अब कोई लाज भी नहीं कर रहे हैं और निपट नंगे सड़क पर भाग चले हैं।

क्या आपको याद है कि भ्रष्टाचारियों और अपराधियों के इस गिरोह में कौन लोग हैं? ये वही फासीवादी हैं जिन्होंने सत्ता में आते ही हम मज़दूरों के बचे-खुचे हक़ों पर पुरज़ोर हमला किया था; ये अम्बानी-अदानी, टाटा-बिड़ला की सम्पत्ति की चौकीदारी करने वाले वही दलाल हैं जो हमारे ट्रेड यूनियन बनाने का हक़ छीनने, काम करने के दौरान हमारी सुरक्षा के क़ानूनों को ख़त्म करने, हमारी न्यूनतम मज़दूरी मारने की साज़िश कर रहे हैं; ये वही साम्प्रदायिक ताक़तें हैं जो हम मज़दूर भाइयों-बहनों को बार-बार धर्म और जाति के नाम पर लड़वाते-मरवाते हैं! इस समय भी सत्ता में बैठी ये फासीवादी ताक़तें मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ अपनी साज़िशों को पूरे ज़ोर-शोर से चला रही हैं। प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने अभी कुछ ही दिनों पहले बयान दिया है कि देश को कुशल और सस्ते श्रम का भण्डार बनाया जायेगा। इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ यह है कि आने वाले समय में देश के करोड़ों-करोड़ युवा मज़दूरों को देशी-विदेशी पूँजी की लूट और शोषण के लिए पेश किया जायेगा। इन पूँजीपतियों को लूटने में कोई असुविधा न हो और वे हमें गुलाम बनाकर काम करा सकें इसके लिए हमारे सारे क़ानूनी अधिकारों को ख़त्म किया जा रहा है। नरेन्द्र मोदी ने ऐलान किया है कि देश में आई.आई.टी. से ज़्यादा आई.टी.आई. की ज़रूरत है ताकि हमारा देश कुशल मज़दूर पैदा कर सके! लेकिन क्या नरेन्द्र मोदी, अमित शाह, सुषमा स्वराज, वसुन्धरा राजे, शिवराज सिंह चौहान जैसे भ्रष्टाचारी फासीवादी नेता इन तकनीकी प्रशिक्षण संस्थानों में अपने बेटे-बेटियों को भेजेंगे? नहीं! उनकी औलादें तो अमेरिका, ब्रिटेन और जर्मनी में पढ़ेंगी, आई.आई.टी.-मेडिकल कॉलेजों में पढ़ेंगी या अपने बाप का अरबों-खरबों का कारोबार सम्भालेंगी! मुँह पर ताला लगाकर कुशल मज़दूर बनने की शिक्षा तो हमारे बेटे-बेटियों को दी जायेगी, जो कि 5-6 हज़ार रुपये में 12 घण्टे खटने को तैयार हों! पहले भी सारी पूँजीवादी सरकारें ग़रीबों के लिए अलग और अमीरों के लिए अलग शिक्षा व्यवस्था का इन्तज़ाम करती थीं। मगर इसको छिपाने की कोशिश भी करती थीं। नरेन्द्र मोदी सरकार ने यह काम भी बेशर्मी के साथ करना शुरू किया है।

ठीक इसी प्रकार, देश के ग़रीब मज़दूरों को कुछ भीख और रहम देने के लिए नरेन्द्र मोदी देश के खाये-पिये-अघाये और ऐयाशी में सिर से पाँव तक डूबे हुए उच्च मध्यवर्ग से अपील कर रहे हैं! देश का प्रधानमन्त्री बोल रहा है कि इन ग़रीब, नंगे-बूचों पर रहम करो! अपनी रसोई गैस की सब्सिडी छोड़ दो और उससे बचा छुट्टा इन ग़रीबों पर फेंक दो! यही नरेन्द्र मोदी जैसे फासीवादियों की पूरी सोच होती है! उनके अनुसार, अमीरज़ादे देश-दुनिया की दौलत पैदा करते हैं और उन्हें कुछ भीख ग़रीब मज़दूरों पर भी फेंक देनी चाहिए! वह भी इसलिए कि ये ग़रीब मज़दूर जो कि देश की आबादी का 80 फीसदी है कहीं बग़ावत न कर दें! लेकिन देश का मज़दूर वर्ग भिखारी नहीं है। बल्कि इस देश के सारे अमीरज़ादे और धन्नासेठ अपने एक-एक निवाले के लिए मज़दूर वर्ग के कर्ज़दार हैं। सुई से लेकर जहाज़ बनाने वाले मज़दूर वर्ग को अमीरज़ादों की ख़ैरात नहीं चाहिए; हमें पूरी दुनिया चाहिए! जैसा कि अंग्रेज़ी मज़दूरों में लोकप्रिय एक कहावत है, "हमें एक केक का टुकड़ा नहीं पूरी बेकरी चाहिए!"

16 मई को सत्ता में आने के ठीक पहले अपने ख़र्चीले चुनाव प्रचार के दौरान नरेन्द्र मोदी की अगुवाई में भाजपा का नारा था, "बहुत हुई महँगाई की मार–अबकी बार मोदी सरकार!" उस नारे का क्या हुआ? दुनिया भर में तेल की कीमतों में आयी भारी गिरावट के बावजूद पहले तो मोदी सरकार ने उस अनुपात में तेल की कीमतों में कमी नहीं की; और जो थोड़ी-बहुत कमी की थी अब उससे कहीं ज़्यादा बढ़ोत्तरी कर दी है। नतीजतन, हर बुनियादी ज़रूरत की चीज़ महँगी हो गयी है। आम ग़रीब आदमी के लिए दो वक़्त का खाना जुटाना भी मुश्किल हो रहा है। मोदी सरकार का नारा था कि देश को भ्रष्टाचार से मुक्त कर दिया जायेगा! लेकिन मोदी सरकार ने सत्ता में आते ही भ्रष्टाचार के अब तक के कीर्तिमानों को ध्वस्त कर दिया! ऐसे तमाम टूटे हुए वायदों की लम्बी सूची तैयार की जा सकती है जो अब चुटकुलों में तब्दील हो चुके हैं और लोग उस पर हँस रहे हैं। नरेन्द्र मोदी के मुँह से "मित्रों..." निकलते ही बच्चों की भी हंसी निकल जाती है। लेकिन यह भी सोचने की बात है कि ऐसे धोखेबाज़, भ्रष्ट मदारियों को देश की जनता ने किस प्रकार चुन लिया?

फासीवादी ताक़तें हमेशा अपने नात्सी पिता गोयबल्स के तरीके को अपनाती हैं। हिटलर के प्रचार मन्त्री गोयबल्स ने एक बार कहा था कि एक झूठ को सौ बार दुहराने से वह सच बन जाता है। ख़ास तौर पर जब जनता के ज़िन्दगी के हालात बद से बदतर हो गये हों, वह महँगाई, बेरोज़गारी, ग़रीबी, कुपोषण और बेघरी से बेहाल हो और उसके सामने कोई क्रान्तिकारी विकल्प मौजूद न हो, तो वह इस प्रकार के फासीवादी झूठों को सच मान भी बैठती है। जब आम मेहनतकश आबादी इस प्रकार की थकान का शिकार हो तो वह ऐसे मदारियों पर अक्सर भरोसा कर बैठती है जो कि नैतिकता, सदाचार, मज़बूत नेतृत्व का ढोल बजाते हुए आते हैं और सभी समस्याओं का किसी जादू की छड़ी से समाधान कर देने का वायदा करते हैं! फासीवादी मदारियों की यह ख़ासियत होती है और हर प्रकार के दक्षिणपंथी लोकरंजकतावादी की यही ख़ासियत होती है। ठीक वैसे ही जैसे दिल्ली के एक बौने दक्षिणपंथी मदारी अरविन्द केजरीवाल की भी यही विशेषता थी। सभी पुरानी चुनावी पार्टियों से ऊबी हुई जनता ने एक नयी पार्टी 'आम आदमी पार्टी' को आख़िरी चुनावों में जमकर वोट दिया। कारण यह था कि पतित लोहियावादी समाजवादी राजनीति और साम्राज्यवादियों के टुकड़ों पर पलने वाली एन.जी.ओ. राजनीति के नाजायज़ रिश्तों से पैदा हुई यह 'आम आदमी पार्टी' और इसका बौना हिटलर अरविन्द केजरीवाल भ्रष्टाचार-विरोधी धर्मयुद्ध की फटी हुई पताका लहराते हुए और "सदाचार-सदाचार" का ढोल बजाते हुए राजनीतिक दृश्यपटल पर अवतरित हुए थे! इन मदारियों का यह दावा था कि सारी समस्या भ्रष्टाचार ही है और अगर भ्रष्टाचार ख़त्म हो गया तो जादुई तरीके से सब ठीक हो जायेगा! मज़दूरों के शोषण के बारे में कभी आम आदमी पार्टी या इसके किसी भी चंगू-मंगू ने एक शब्द नहीं बोला! मगर महँगाई, ग़रीबी, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, और कांग्रेस, भाजपा आदि से ऊबी हुई और तंग आ चुकी जनता राजनीतिक तौर पर इस कदर थकी हुई और मोहभंग का शिकार थी कि उसे लगा कि एक बार इसे ही आजमा लिया जाय। छोटे दुकानदारों की शैली में 'जी-जी' करके बात करने वाले अरविन्द केजरीवाल के साथ दिल्ली के सभी टुच्चे व्यापारियों को तुरन्त ही तदनुभूति, सहानुभूति, सुखानुभूति का अनुभव हुआ और उसे लगा कि उसके सिर पर जो बरबादी की तलवार लटकी है उससे ख़ुद को गर्व से 'बनिया व्यापारी' और 'धन्धे वाला' बताने वाला यह शख़्स उन्हें बचा सकता है! (कोई ताज्जुब की बात नहीं कि नरेन्द्र मोदी ने भी बड़े गर्व से कहा था कि वह गुजराती है और धन्धा उसके खून में बहता है! केवल इतने से ही मज़दूर वर्ग को मोदी और केजरीवाल जैसों की असलियत समझ लेनी चाहिए!) ग़रीब मेहनतकश आबादी के एक हिस्से को लगा कि सबसे कम बुरी तो अभी यही पार्टी दिख रही है, इसलिए उसे एक बार आजमा लिया जाये! लेकिन सत्ता में आने के कुछ महीनों में ही मज़दूरों पर दमन, सरकारी कर्मचारियों के वेतन रोकने, पेट्रोल व डीज़ल पर वैट बढ़ाकर उनकी कीमतें बढ़ाने और महँगाई बढ़ाने में पूँजीवाद के इस नये दलाल केजरीवाल ने सभी को टक्कर देना शुरू कर दिया। इसने तमाम भ्रष्टाचारी व्यापारियों पर छापा मारने से भ्रष्टाचार-रोधी शाखा को रोक दिया ताकि उसी के समान 'बनिया व्यापारी' होने पर गर्व करने वाले सभी धनी दुकानदारों को राहत मिले! इस सरकार ने अपने प्रचार पर 526 करोड़ रुपये का बजट रखा है जो एक नया रिकॉर्ड है! इसके अनेक विधायक और मन्त्री सम्पत्ति गबन करने, शराब बाँटने, गुण्डई करने, पत्नी को पीटने, फर्जीवाड़ा और चार-सौ-बीसी करते हुए रंगे हाथों पकड़े गये हैं और उन पर मुकदमे चल रहे हैं! उनमें से दो जेल में हैं! खुद केजरीवाल के बंगले का बिजली का बिल एक लाख से ऊपर आ रहा है और उसके बीवी-बच्चे विदेश घूम रहे हैं! इतने के बाद दिल्ली की आम जनता को भी समझ में आ रहा है कि उसके साथ कैसा धोखा हुआ है। सबसे बड़ा धोखा तो दिल्ली की मज़दूर आबादी के साथ हुआ है। अपने प्रचार के लिए 526 करोड़ रुपये की भारी रकम रखने का कारण यह है कि एक साल पूरा होने से पहले ही पूरी दिल्ली में केजरीवाल और उसकी 'आम आदमी पार्टी' की ऐसी 'थू-थू' हुई है कि उसे डर है कि जनता उसे सड़कों पर पीट भी सकती है। ग़ौरतलब है कि अरविन्द केजरीवाल ने दिल्ली पुलिस से दरख़्वास्त की है कि वह किसी को भी उसके 30 फीट के दायरे में न आने दे! ये सदाचारी 'जनता का सेवक' इस कदर किससे डरा हुआ है?! ज़ाहिर है, दिल्ली के आम मेहनतकश लोग वाकई केजरीवाल और उसके चेले-चपाटियों को पीट सकते हैं। दिल्ली की जनता के साथ 'आम आदमी पार्टी' और इसके चंगुओं-मंगुओं ने सबसे बड़ा धोखा किया है! लेकिन चूँकि इन्हें पूँजीवादी राजनीति करने का अनुभव ज़्यादा नहीं है इसलिए ये तमाम अपराध और भ्रष्टाचार करने में हाथ की सफाई नहीं दिखला पाये और हर बार रंगे हाथों पकड़े गये! इनकी नियति यही है कि ये एक राजनीतिक पार्टी के तौर आने वाले समय में या तो बिखर जायेंगे या फिर पूरी तरह बेनक़ाब होकर परिधि पर चले जायेंगे। 'आम आदमी पार्टी' एक ऐसी पार्टी थी जो विपक्ष में रहकर ही ज़िन्दा रह सकती थी! सत्ता में आते ही इनका राजनीतिक केंचुल-नृत्य (स्ट्रिपटीज़–एक अश्लील नृत्य जिसमें नर्तकी एक-एक करके अपने सारे कपड़े उतार देती है) शुरू होना ही था! इनका समर्थन करने वालों के साथ जो धोखा हुआ है उसके कारण इनका एक बड़ा हिस्सा प्रतिक्रिया में आकर मोदी के समर्थन में जा सकता है। अब यह समय की बात है कि यह कब तक होता है। लेकिन इनमें से किसी एक सम्भावना का असलियत में बदलना तय है।

लेकिन देश के पैमाने पर संघ परिवार के चुनावी गिरोह भाजपा की सरकार ने देश की जनता से उससे भी बड़ा धोखा किया है और शायद उससे भी ज़्यादा बेशर्मी के साथ। ये दोनों ही ताक़तें इस समय मज़दूर वर्ग के सबसे बड़े शत्रुओं की भूमिका में हैं। ज़ाहिर है कि कांग्रेस मज़दूरों के हक़ों पर हमले करने में कहीं भी इनसे पीछे नहीं है। लेकिन यह भी सच है कि पूँजीपति वर्ग की 'मैनेजिंग कमेटी' की ज़िम्मेदारी सम्भालने के लिए इन सभी पूँजीवादी पार्टियों में भी लगातार प्रतिस्पर्द्धा चलती रहती है। कम-से-कम इस वक़्त भाजपा और आम आदमी पार्टी ने इस काम में कांग्रेस को पछाड़ रखा है। निश्चित तौर पर, आने वाले समय में कांग्रेस का सितारा फिर चढ़ेगा क्योंकि पूँजीवादी चुनावी राजनीति में ऐसा ही होता है। एक मुखौटा कुछ दिन में घिस जाता है तो उसे हटाकर दूसरा मुखौटा लगाने की ज़रूरत पड़ जाती है। जब एक पूँजीवादी पार्टी पूँजीपति वर्ग की नंगई और बेशर्मी के साथ सेवा करते हुए पूरी तरह बेनक़ाब हो जाती है तो पूँजीवादी व्यवस्था को बचाये रखने के लिए दूसरी या किसी तीसरी पार्टी का सत्ता में आना अनिवार्य हो जाता है। यही कारण है कि पूँजीपति वर्ग का पूँजीवादी जनतन्त्र आम तौर पर हमेशा बहुपार्टी संसदीय जनवाद होता है। आज के दौर में हमें विशेष तौर पर फासीवादी भाजपा और दक्षिणपंथी लोकरंजकतावादी आम आदमी पार्टी की साज़िशों को

(पेज 13 पर जारी)

यूनान में जनमत संग्रह के नतीजे के मायने

यूनानी जनता में पूँजीवाद के विकल्प की आकांक्षा और सिरिज़ा की शर्मनाक ग़द्दारी

पिछली 5 जुलाई को यूरोपीय संघ (ईयू), यूरोपीय केन्द्रीय बैंक (ईसीबी) एवं विश्व मुद्रा कोष (आईएमएफ़) के त्रिगुट द्वारा यूनान पर थोपे जा रहे घोर जनविरोधी प्रस्तावों पर हुए जनमत संग्रह में यूनान की जनता ने उन प्रस्तावों को भारी मतों से नकार दिया। 61.3 प्रतिशत मतदाताओं ने त्रिगुट के प्रस्तावों के ख़िलाफ़ वोट दिया। इस जनमत संग्रह की ख़ासियत यह रही कि मीडिया के तमाम दुष्प्रचार के बावजूद इसमें यूनान के शहरी और ग्रामीण सभी हिस्सों में बड़ी संख्या में मज़दूर वर्ग एवं युवाओं ने बढ़चढ़कर किफ़ायतसारी (ऑस्टेरिटी) की नीतियों के ख़िलाफ़ वोट दिया। इस नतीजे से यह दिन के उजाले की तरह साफ़ है कि यूनान की जनता में न सिर्फ़ त्रिगुट के ख़िलाफ़ बल्कि समूची पूँजीवादी व्यस्था के ख़िलाफ़ ज़बरदस्त गुस्सा है और उसमें इस लुटेरी व्यवस्था के विकल्प की प्रबल आकांक्षा है। लेकिन वामपन्थी लोकरंजकतावादी सिरिज़ा से यह उम्मीद करना बेमानी होगी कि वह यूनानी जनता की इस आकांक्षा को पूरा करने की दिशा में कोई क़दम उठायेगी। सच तो यह है कि इस जनमत संग्रह को आयोजित कराने के पीछे सिरिज़ा का मक़सद किसी आमूलचूल बदलाव की तैयारी करना नहीं बल्कि पूँजीवाद के दायरे में ही त्रिगुट से चल रही सौदेबाज़ी में जनता के समर्थन के नाम पर अपने पलड़े में कुछ बटखरे रखना था। यही वजह थी कि इस जनमत संग्रह के दायरे को सीमित रखकर सिर्फ़ त्रिगुट द्वारा प्रस्तावित पैकेज पर 'हाँ' या 'ना' में वोटिंग करने को कहा गया। सिरिज़ा ने राजनीतिक धूर्तता का परिचय देते हुए इस जनमत संग्रह में 'ना' का मतलब अपने ख़ुद के प्रस्ताव का समर्थन मानकर अपना प्रस्ताव यूनान की संसद से पारित करवा लिया। ग़ौरतलब है कि सिरिज़ा के नेतृत्व वाली गठबन्धन सरकार द्वारा संसद में पारित प्रस्ताव अपनी अन्तर्वस्तु में त्रिगुट के प्रस्ताव से मेल खाता है। इस प्रस्ताव में त्रिगुट से कुछ रियायतों की भीख के बदले सिरिज़ा ने बेशर्मी के साथ निजीकरण, सरकारी ख़र्चों में कटौती, करों में बढ़ोतरी जैसी घोर जनविरोधी और तथाकथित किफ़ायतसारी की नीतियों को लागू करना स्वीकार किया है। यही नहीं 12 जुलाई को ब्रसेल्स में हुए एक समझौते में तो यूनान के प्रधानमन्त्री सिप्रास की चाल उलटी पड़ गयी जब उसने जर्मनी के नेतृत्व वाले पूँजीपति लुटेरों के गिरोह के सामने नाक रगड़ते हुए यूनान की वित्तीय सम्प्रभुता को छीनने वाले समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये, जिसके तहत राष्ट्रीय सम्पत्ति को निजी हाथों में बेचा जाना तय किया गया है।

यूनान के संकट का मौजूदा दौर पिछले महीने के अन्त में शुरू हुआ, जब त्रिगुट ने यूनान सरकार को क़र्ज़े की रक़म अदा करने के लिए और समय देने की एवज़ में घोर जनविरोधी प्रस्तावों को यूनान की जनता पर थोपने की क़वायद शुरू की। 27 जून को यूनान के प्रधानमन्त्री अलेक्सिस सिप्रास ने इन प्रस्तावों पर एक जनमत संग्रह कराने की घोषणा की। अगले दिन यूनान सरकार ने एक सप्ताह के लिए सभी बैंकों को बन्द करने की घोषणा की और एटीएम से प्रतिदिन अधिकतम 60 यूरो निकालने की सीमा रख दी। वास्तव में, यह भी सिरिज़ा सरकार की एक चाल ही थी। यदि जनमत संग्रह की घोषणा करनी थी तो उससे पहले ही बैंकों का राष्ट्रीकरण किया जाना चाहिए था, जोकि चुनाव जीतने से पहले सिरिज़ा के कार्यक्रम का एक बिन्दु भी था। बिना बैंकों के राष्ट्रीकरण के जनमत संग्रह का एलान करके सिप्रास ने अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय एजेंसियों को एक प्रकार से यह अवसर दिया कि वह यूनानी जनता की बाँह मरोड़कर उसे जनमत संग्रह में त्रिगुट के प्रस्ताव को स्वीकारने को बाध्य करने का प्रयास कर सके। उन्होंने यह प्रयास किया भी क्योंकि उस एक सप्ताह तक यूनानी जनता के एक अच्छे-ख़ासे हिस्से के पास अपने रोज़मर्रा के जीवन की आवश्यक सामग्रियाँ ख़रीदने के लिए भी नक़दी नहीं बची थी! मगर इन सारी चालों के बावजूद त्रिगुट के प्रस्ताव को नकारते हुए यूनानी जनता ने 'नहीं' के विकल्प को चुना, हालाँकि, जैसाकि हम देख चुके हैं, उसके पास सकारात्मक तौर पर चुनने के लिए यह विकल्प नहीं था कि वह यूरोपीय संघ व यूरो से बाहर आ जाये। जुलाई के पहले सप्ताह में यूनान विश्व मुद्राकोष से लिये गये क़र्ज़ की अदायगी न कर पाने वाला पहला विकसित देश बना। पूरी दुनिया में यूनान के संकट की ख़बरें छायी रहीं और इस बात के क़यास लगने शुरू हो गये कि यूनान को यूरोज़ोन से निकलना होगा।

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, 5 जुलाई के जनमत संग्रह में यूनान की जनता द्वारा त्रिगुट के किफ़ायतसारी के जनविरोधी प्रस्ताव को ठुकराने को बड़ी ही चालाकी से यूनान की सरकार ने अपने प्रस्ताव के पक्ष में समर्थन के रूप में प्रस्तुत करके यूनान की संसद द्वारा अपना प्रस्ताव पारित करवा लिया जो कमोबेश त्रिगुट के प्रस्ताव जैसा ही था। हालाँकि अन्य यूरोपीय शक्तियाँ इस प्रस्ताव को मानने से भी आनाकानी कर रही हैं। संसद में वोटिंग के दौरान सिरिज़ा के भीतर के अन्तर्विरोध भी सामने आये जब उसके 162 सांसदों में से 17 ने इस प्रस्ताव के समर्थन में वोट नहीं किया।

ग़ौरतलब है कि पूँजीवादी मीडिया तो सिरिज़ा को रैडिकल वामपन्थी कहता ही है, कई मार्क्सवादी भी सिरिज़ा से यह उम्मीद लगाये हैं कि वह यूनान में समाजवाद का एक मॉडल पेश करेगा। इतिहास में बार-बार साबित होने के बावजूद मार्क्सवाद-लेनिनवाद की यह बुनियादी शिक्षा ऐसे तथाकथित मार्क्सवादियों को नहीं समझ में आती कि सर्वहारा वर्ग बुर्जुआ राज्य की बनी-बनायी मशीनरी पर काबिज़ होकर समाजवाद की स्थापना नहीं कर सकता। बुर्जुआ राज्यसत्ता को बलपूर्वक ध्वंस किये बिना समाजवाद की स्थापना नहीं हो सकती। बुर्जुआ चुनावों में बहुमत हासिल करके सरकार बनाकर समाजवाद के निर्माण के सपने देखने वाले इस बुनियादी समझ को अनदेखा करते हैं कि सरकार राज्यसत्ता नहीं होती बल्कि वह राज्यसत्ता की विराट मशीनरी के एक अंग विधायिका की नुमाइन्दगी करती है। औपचारिक तौर पर, प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति व कैबिनेट आदि भी कार्यपालिका में शामिल होते हैं। लेकिन सही मायने में पूँजीवादी कार्यपालिका का कार्य नौकरशाही, पुलिस, सेना, अन्य सशस्त्र बलों जैसे स्थायी और न चुने जाने वाले निकाय करते हैं। राज्यसत्ता के असली दाँत और नाख़ून फ़ौज, अर्द्धसैनिक बल और पुलिस होती है। सरकार पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी का काम करती है। इसलिए यदि सर्वहारा वर्ग की कोई पार्टी बुर्जुआ चुनावों में बहुमत हासिल करके सरकार बना भी लेती है तो पूँजीपति वर्ग फ़ौज के ज़रिये सरकार का तख़्तापलट करवा देता है जैसाकि चीले में सल्वादोर अयेन्दे की सरकार के साथ हुआ।

यूनान की बात करें तो सिरिज़ा की सरकार वैसे भी पूर्ण बहुमत में भी नहीं है, बल्कि वह दक्षिणपन्थी राष्ट्रवादी पार्टी अनेल के साथ गठबन्धन चला रही है। चुनाव के पहले गरमा-गरम जुमलों का इस्तेमाल करने वाली सिरिज़ा सरकार में आते ही उसी भाषा में बात करने लगी जिस भाषा में पूर्ववर्ती न्यू डेमोक्रेसी और पासोक की संशोधनवादी और बुर्जुआ सरकार बात करती थीं। उसने सत्ता में आते ही यूरोपीय संघ के साथ समझौता करके जर्मनी के नवउदारवादी एजेण्डे के सामने घुटने टेक दिये। सिरिज़ा की यह समझौतापरस्ती और अब खुलेआम ग़द्दारी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह लेनिनवादी उसूलों पर बनी जनवादी केन्द्रीयता के ढाँचे वाली सर्वहारा वर्ग की पार्टी तो है नहीं। इसमें भाँति-भाँति के संगठनों की पंचमेल खिचड़ी है जिसमें अराजकतावादी-संघातिपत्यवादी, यूरोकम्युनिस्ट, पर्यावरणवादी, नारीवादी, अस्मितावादी और त्रॉत्स्कीपन्थी शामिल हैं। ऐसे भानुमती कुनबे ने वही किया जिसकी उम्मीद थी।

यूनान के संकट का समाधान समाजवादी क्रान्ति के ज़रिये सर्वहारा वर्ग की सत्ता स्थापित करके ही हो सकता है। ऐसी समाजवादी सत्ता सभी विदेशी क़र्ज़ों को मंसूख़ करने का ऐलान करेगी, बैंकों एवं बड़ी कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण करते हुए यूरोज़ोन से बाहर निकलकर अपनी मुद्रा संस्थापित करके आर्थिक नियोजन व आत्मनिर्भर विकास के रास्ते पर आगे बढ़ते हुए सामाजिक उत्पादन के तर्कसंगत बँटवारे पर ज़ोर देगी। लेकिन यूनान में क्रान्तिकारी ताक़तों की कमज़ोर स्थिति देखते हुए निकट भविष्य में इसकी सम्भावना नज़र नहीं आती। यानी कि आधुनिक पूँजीवादी युग की यूनानी त्रासदी आने वाले दिनों में भी जारी रहेगी और यूनान की जनता की मुश्किलें बरक़रार रहेंगी।

आनन्द

अख़बार और मज़दूर

यह सदस्यता अभियानों का दौर है। बुर्जुआ अख़बारों के सम्पादक और प्रशासक अपने माल की ओर राहगीरों (यानी कि पाठकों) का ध्यान आकर्षित करने के लिए अपनी डिस्प्ले विण्डो को सँवारते हैं, अपनी दुकान के साइनबोर्डों पर थोड़ा वार्निश लगाते हैं और अपील करते हैं। उनके माल चार या छह पृष्ठों के अख़बार होते हैं जो प्रेस के निर्माताओं और व्यापारियों के लिए उपयुक्त मौजूदा राजनीति के तथ्यों का अहसास करने और उन्हें समझने के तरीक़ों को पाठक के दिमाग़ में घुसेड़ने के लिए हर सुबह या हर शाम निकलते हैं।

हम, ख़ासतौर पर मज़दूरों के साथ, इस मासूम सी दिखने वाली हरकत के महत्व और इसकी गम्भीरता पर चर्चा करना चाहेंगे, जो आपके द्वारा सदस्यता लेने के लिए अख़बार को चुनने में निहित है। यह प्रलोभनों और ख़तरों से भरा हुआ चयन है जिसे कसौटी पर कसते हुए एवं परिपक्व मन्थन के बाद सचेतन तौर पर किया जाना चाहिए।

सर्वोपरि, मज़दूर को बुर्जुआ अख़बार के साथ किसी भी प्रकार की एकजुटता को दृढ़ता से ख़ारिज करना चाहिए। और उसे हमेशा, हमेशा, हमेशा यह याद रखना चाहिए कि बुर्जुआ अख़बार (इसका रंग जो भी हो) उन विचारों एवं हितों से प्रेरित संघर्ष का एक उपकरण होता है जो आपके विचार और हित के विपरीत होते हैं। इसमें छपने वाली सभी बातें एक ही विचार से प्रभावित होती हैं : वह है प्रभुत्वशाली वर्ग की सेवा करना, और जो आवश्यकता पड़ने पर इस तथ्य में परिवर्तित हो जाती है : मज़दूर वर्ग का विरोध करना। और वास्तव में, बुर्जुआ अख़बार की पहली से आख़िरी लाइन तक इस पूर्वाधिकार की गन्ध आती है और यह दिखायी देता है।

लेकिन ख़ूबसूरत – जो कि वास्तव में बदसूरत है – चीज़ यह है कि बुर्जुआ वर्ग के पक्ष में किये जाने वाले इस निर्दयी काम के लिए बुर्जुआ वर्ग से धन लेने के बजाय, बुर्जुआ अख़बार उन्हीं मेहनतकश वर्गों से धन भी जुटाते हैं जिनका वे हमेशा विरोध करते हैं। और मज़दूर वर्ग भुगतान करता है; ठीक समय पर, उदारतापूर्वक।

लाखों मज़दूर बुर्जुआ अख़बारों को नियमित रूप से और रोज़ अपने पैसे देते हैं, इस तरह उनकी ताक़त बढ़ाने में सहायता करते हैं। क्यों? यदि यह प्रश्न आपको उस पहले

अन्तोनियो ग्राम्शी
(इटली के मज़दूर वर्ग के नेता, 1891–1937)

मज़दूर से पूछना पड़ा हो जिसे आपने ट्राम में अथवा सड़क पर बुर्जुआ अख़बार लिये देखा हो तो आपको जवाब मिला होगा : 'क्योंकि मुझे यह जानने की ज़रूरत है कि क्या हो रहा है।' और यह बात उसके दिमाग़ में कभी नहीं घुसती कि ख़बरों और उन्हें पकाने वाली सामग्रियों को ऐसी कला से उजागर किया जाता है जो एक निश्चित दिशा में उसके विचारों को मोड़ती है एवं उसकी आत्मा को प्रभावित करती है। और फिर भी उसे पता है कि यह अख़बार अवसरवादी है, दूसरा वाला धनिकों के लिए है, तीसरे, चौथे, पाँचवें अख़बार राजनीतिक दलों से जुड़े हैं जिनके हित उसके हित से बिल्कुल विपरीत हैं।

और इस प्रकार प्रतिदिन वही मज़दूर व्यक्तिगत रूप से देखता है कि बुर्जुआ अख़बार यहाँ तक कि बहुत ही साधारण तथ्यों को ऐसे तरीक़े से बताते हैं जो बुर्जुआ वर्ग के पक्ष एवं मज़दूर वर्ग और उसकी राजनीति के विरोध में होता है। क्या हड़ताल हुई? जहाँ तक बुर्जुआ अख़बारों का सवाल है मज़दूर हमेशा ग़लत होते हैं। क्या कोई प्रदर्शन हुआ? प्रदर्शनकारी हमेशा ग़लत होते हैं, महज़ इसलिए क्योंकि वे मज़दूर हैं जिनका दिमाग़ हमेशा गर्म रहता है, वे हिंसक होते हैं, उपद्रवी होते हैं। सरकार ने कोई क़ानून पारित किया? यह हमेशा अच्छा, उपयोगी और न्यायपूर्ण होता है, यद्यपि यह नहीं होता। और यदि कोई चुनावी, राजनीतिक अथवा प्रशासनिक संघर्ष होता है? सबसे अच्छे कार्यक्रम और उम्मीदवार हमेशा बुर्जुआ दलों के होते हैं।

और हम उन सभी तथ्यों के बारे में बात तक नहीं कर रहे हैं जिनपर बुर्जुआ अख़बार या तो चुप्पी साधे रहते हैं, अथवा मज़दूरों को गुमराह करने, भ्रमित करने या उन्हें अज्ञानी बनाये रखने के लिए उसका उपहास उड़ाते हैं, या उसे झूठा साबित करते हैं। इसके बावजूद, बुर्जुआ अख़बारों के प्रति मज़दूर की आपराधिक मौन स्वीकृति असीम है। हमें इसके ख़िलाफ़ खड़ा होना होगा और मज़दूरों को वास्तविकता की सही पहचान करानी होगी। हमें बार-बार यह दोहराना होगा कि अख़बार विक्रेता के हाथों में अन्यमनस्कता से पैसे देना बुर्जुआ अख़बार को तोप के गोले देना है जिसका उपयोग वह उपयुक्त समय पर,मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ करेगा।

यदि मज़दूरों को इन मूलभूत सच्चाइयों से अवगत कराया गया होता तो वे उसी एकजुटता और अनुशासन के साथ बुर्जुआ प्रेस का बहिष्कार करना सीख गये होते जिससे बुर्जुआ मज़दूरों के अख़बारों, जो कि समाजवादी प्रेस है, का बहिष्कार करता है। बुर्जुआ प्रेस, जो कि आपका विरोधी है, को आर्थिक सहयोग नहीं दें। सभी बुर्जुआ अख़बारों के सदस्यता अभियान के इस दौर में हमारा नारा यही होना चाहिए। बहिष्कार करो, बहिष्कार करो, बहिष्कार करो!

नयी समाजवादी क्रान्ति के तूफ़ान को निमंत्रण दो! सर्वहारा के हिरावलों से अपेक्षा है स्वतंत्र वैज्ञानिक विवेक की और धारा के विरुद्ध तैरने के साहस की!

इतिहास में पहले भी कई बार ऐसा देखा गया है कि राजनीतिक पटल पर शासक वर्गों के आपसी संघर्ष ही सक्रिय और मुखर दिखते हैं तथा शासक वर्गों और शासित वर्गों के बीच के अन्तरविरोध नेपथ्य के नीम अँधेरे में धकेल दिये जाते हैं। ऐसा तब होता है जब क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी होती है, ऐतिहासिक प्रगति की शक्तियों पर गतिरोध और विपर्यय की शक्तियाँ हावी होती हैं। हमारा समय विपर्यय और प्रतिक्रिया का ऐसा ही अँधेरा समय है। और यह अँधेरा पहले के ऐसे ही कालखण्डों की तुलना में बहुत अधिक गहरा है, क्योंकि यह श्रम और पूँजी के बीच के विश्व ऐतिहासिक महासमर के दो चक्रों के बीच का ऐसा अन्तराल है, जब पहला चक्र श्रम की शक्तियों के पराजय के साथ समाप्त हुआ है और दूसरा चक्र अभी शुरू नहीं हो सका है। विश्व-पूँजीवाद के ढाँचागत असाध्य संकट, उसकी चरम परजीविता, साम्राज्यवादी लुटेरों की फिर से गहराती प्रतिस्पर्द्धा, पूरी दुनिया के विभिन्न हिस्सों में साम्राज्यवादी बर्बरता और पूँजीवादी लूट-खसोट के विरुद्ध जनसमुदाय की लगातार बढ़ती नफ़रत और इस कठिन समय में क्रान्तिकारी सर्वहारा नेतृत्व के अभाव के बावजूद दुनिया के किसी न किसी कोने में भड़कते रहने वाले जन संघर्षों का सिलसिला यह स्पष्ट संकेत दे रहे हैं कि आने वाले समय में विश्व पूँजीवाद के विरुद्ध लड़ा जाने वाला युद्ध निर्णायक होगा। श्रम और पूँजी के बीच विश्व ऐतिहासिक महासमर का अगला चक्र निर्णायक होगा क्योंकि अपनी जड़ता की शक्ति ये जीवित विश्व पूँजीवाद में अब इतनी जीवन शक्ति नहीं बची है कि अक्तूबर क्रान्ति के नये संस्करणों द्वारा पराजित होने के बाद वह फिर विश्वस्तर पर उठ खड़ा हो और दुनिया को विश्वव्यापी विपर्यय का एक और दौर देखना पड़े। इक्कीसवीं सदी की सर्वहारा क्रान्तियों के ऊपर पूँजीवाद के पूरे युग को इतिहास की कचरा-पेटी के हवाले करने की ज़िम्मेदारी है। साथ ही, ये क्रान्तियाँ केवल पाँच सौ वर्षों की आयु वाले पूँजीवाद के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि पाँच हज़ार वर्षों की आयु वाले समूचे वर्ग समाज के विरुद्ध निर्णायक क्रान्तियाँ होंगी, क्योंकि पूँजीवाद के बाद मानव सभ्यता के अगले युग केवल समाजवादी संक्रमण और कम्युनिज़्म के युग ही हो सकते हैं – समाज-विकास की गतिकी का ऐतिहासिक-वैज्ञानिक अध्ययन यही बताता है।

इसलिए, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भावी क्रान्तियों को रोकने के लिए विश्व-पूँजीवाद आज अपनी समस्त आत्मिक-भौतिक शक्ति का व्यापकतम, सूक्ष्मतम और कुशलतम इस्तेमाल कर रहा है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि विश्व ऐतिहासिक महासमर के निर्णायक चक्र के पहले, प्रतिक्रिया और विपर्यय का अँधेरा इतना गहरा है और गतिरोध का यह कालखण्ड भी पहले के ऐसे ही कालखण्डों की अपेक्षा बहुत अधिक लम्बा है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि पूरी दुनिया में नई सर्वहारा क्रान्तियों की हिरावल शक्तियाँ अभी भी ठहराव और बिखराव की शिकार हैं। यह सबकुछ इसलिए है कि हम युग-परिवर्तन के अबतक के सबसे प्रचण्ड झंझावाती समय की पूर्वबेला में जी रहे हैं।

यह एक ऐसा समय है जब इतिहास का एजेण्डा तय करने की ताक़त शासक वर्गों के हाथों में है। कल इतिहास का एजेण्डा तय करने की कमान सर्वहारा वर्ग के हाथों में होगी। यह एक ऐसा समय है जब शताब्दियों के समय में चन्द दिनों के काम पूरे होते हैं, यानी इतिहास की गति इतनी मद्धम होती है कि गतिहीनता का आभास होता है। लेकिन इसके बाद एक ऐसा समय आना ही है जब शताब्दियों के काम चन्द दिनों में अंजाम दिये जायेंगे।

लेकिन गतिरोध के इस दौर की सच्चाइयों को समझने का यह मतलब नहीं कि हम इतमीनान और आराम के साथ काम करें। हमें अनवरत उद्विग्न आत्मा के साथ काम करना होगा, जान लड़ाकर काम करना होगा। केवल वस्तुगत परिस्थितियों से प्रभावित होना इंकलाबियों की फितरत नहीं। वे मनोगत उपादानों से वस्तुगत सीमाओं को सिकोड़ने-तोड़ने के उद्यम को कभी नहीं छोड़ते। अपनी कम ताकत को हमेशा कम करके ही नहीं आँका जाना चाहिए। अतीत की क्रान्तियाँ बताती हैं कि एक बार यदि सही राजनीतिक लाइन के निष्कर्ष तक पहुँच जाया जाये और सही सांगठनिक लाइन के आधार पर सांगठनिक काम करके उस राजनीतिक लाइन को अमल में लाने वाली क्रान्तिकारी कतारों की शक्ति को लामबन्द कर दिया जाये तो बहुत कम समय में हालात को उलट-पुलटकर विस्मयकारी परिणाम हासिल किये जा सकते हैं। हमें धारा के एकदम विरुद्ध तैरना है। इसलिए, हमें विचारधारा पर अडिग रहना होगा, नये प्रयोगों के वैज्ञानिक साहस में रत्ती भर कमी नहीं आने देनी होगी, जी-जान से जुटकर पार्टी-निर्माण के काम को अंजाम देना होगा और वर्षों के काम को चन्द दिनों में पूरा करने का जज़्बा, हर हाल में कठिन से कठिन स्थितियों में भी बनाये रखना होगा।

(बिगुल, दिसम्बर 2006-जनवरी 2007 अंक में प्रकाशित सम्पादकीय के अंश)

चीन के प्रदूषणकारी कारख़ानों के ख़िलाफ़ हज़ारों लोग सड़कों पर

आर्थिक संकट के शिकार पूँजीपति वर्ग को करना पड़ रहा है व्यापक जनअसन्तोष का सामना

पिछले महीने के आख़िर में चीन के दक्षिण पश्चिमी शंघाई के ज़िले जिनशान में दसियों हज़ार लोग सरकार के विरोध में सड़कों पर उतर आये। दरअसल, मुद्दा सरकार द्वारा जिनशान में एक ज़हरीले रासायन पैराज़ायलिन (पीएक्स) के निर्माण के लिए प्लाण्ट लगाये जाने का था। सरकार की मंशा गाओकियाओ औद्योगिक पार्क से पैराज़ायलिन के प्लाण्ट को जिनशान में लाने की थी। जैसे ही लोगों को सरकार की इसयोजना का पता चला, उन्होंने जिनशान की सरकारी इमारतों का घेराव शुरू कर दिया। उनके हाथों में "पीएक्स बाहर जाओ!", "हमें हमारा जिनशान वापिस दो!" जैसे नारों वाली दफ़्तियाँ थीं। सरकार ने स्थानीय मीडियापर दबाव बनाकर प्रदर्शन की ख़बर के "ब्लैकआउट" की पूरी कोशिश की। लेकिन जैसे-जैसे ख़बर फैलती गयी विरोध प्रदर्शन तेज़ होते गये। लोगों की संख्या 50,000 तक पहुँच गयी। पुलिस ने प्रदर्शनों को कुचलने की हरचन्द कोशिश की, कई लोगों को गिरफ़्तार किया गया, कईयों को उनके मालिकों ने नौकरी से हाथ धो बैठने की धमकियाँ दीं, लेकिन जिनशान तथा आसपास के इलाक़ों के लोग प्लाण्ट के विरोध में पूरे 6 दिन तक डटे रहे। आख़िरकार सरकार को जनता की एकजुटता के सामने झुकना पड़ा और प्लाण्ट के निर्माण की योजना ठण्डे बस्ते में डालनी पड़ी।

असल में पैराज़ायलिन एक ज्वलनशील रासायन है जो प्लास्टिक की बोतलों, फ़ैब्रिक आदि के निर्माण में उपयोग होता है। चीन इस रासायन का सबसे बड़ा उत्पादक है। लेकिन पिछले 7-8 साल से इसके निर्माण के ख़िलाफ़ लोगों के बड़े तथा हिंसक संघर्ष हुए हैं। नये सिरे से इन प्रदर्शनों की शुरुआत इसी साल अप्रैल महीने से हुई थी। अप्रैल महीने में चीन के फीजीहान प्रान्त के जांगजाउ में स्थित पैराज़ायलिन बनाने वाली केमिकल फ़ैक्टरी में रिसाव की वजह से धमाका हो गया जिसके चलते 12 लोग ज़ख़्मी हो गये। इस हादसे की भयावहता का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि प्लाण्ट में लगी आग को बुझाने में पूरे 3 दिन लग गये। इस हादसे के बाद से चीन के हर क्षेत्र में लोगों ने पैराज़ायलिन के प्लाण्टों के विरुद्ध आवाज़ उठानी शुरू कर दी। इन प्रदर्शनों के चलते सरकार कभी प्लाण्ट को इस क्षेत्र में लगाती रही तो कभी उस क्षेत्र में। लेकिन जहाँ भी यह प्लाण्ट लगाया गया, लोगों की एकजुटता ने सरकार को इसे बन्द करने पर मजबूर कर दिया। जिनशान के औद्योगिक पार्क में प्लाण्ट लगाने की हाल की कोशिश में भी सरकार को मुँह की खानी पड़ी।

वैसे मुद्दा केवल पैराज़ायलिन के निर्माण का नहीं है। वर्ष 1976 में माओ की मृत्यु के बाद देङ सियाओ पिङ के नेतृत्व में चीन में पूँजीवादी पुनर्स्थापना हो गयी जिसके बाद पूँजीवादी पथगामियों ने जनता के महान समाजवादी प्रयोगों को मिट्टी में मिलाना शुरू कर दिया। जहाँ पहले हर योजना जनता की ज़रूरत के आधार पर तथा जनता के सामूहिक निर्णय से ली जाती थी, वहीं अब इसका निर्णय पूँजी करने लगी। इसके बाद चीन में अथाह पूँजीवादी "विकास" हुआ, लेकिन इस विकास का लक्ष्य जनता की बेहतरी नहीं बल्कि केवल मुनाफ़ा था। सभी पर्यावरणीय नियमों को ताक पर रखकर औद्योगिक पार्क बनाये गये। रिहायशी इलाक़ों के बिल्कुल पास रासायनिक कारख़ाने लगाये गये। इसी का नतीजा है कि चीन आज दुनिया के सर्वाधिक प्रदूषित देशों में से एक है। लोगों में कैंसर जैसी बीमारियों का पाया जाना अब आम बात हो गयी है। चीन में ऐसे कुल क़रीब 200 इलाक़े हैं जिन्हें "कैंसर गाँव" कहा जाता है। पिछले दशक के दौरान अकेले बीजिंग में फेफड़ों के कैंसर के मामलों में 60 फ़ीसदी की वृद्धि दर्ज की गयी है। फ़ैक्टरियों द्वारा नदियों-झीलों में अन्धाधुँध तरीक़े से बहाये जा रहे रासायनिक कूड़े ने आधे से ज़्यादा जल को इतना दूषित कर दिया है कि उसे अब किसी भी तरीक़े से पीने लायक नहीं बनाया जा सकता। स्थिति की भयावहता को इसी बात से समझा जा सकता है कि औद्योगिक कूड़े की वजह से दक्षिणी गुआंगदोंग प्रान्त के शहरशांगबा से गुज़रते समय एक नदी का रंग सफ़ेद से बदलकर नारंगी हो जाता है। भू-जल की तो हालत इससे भी बदतर है। लगभग 90 फ़ीसद भू-जल दूषित हो चुका है। यही वजह है कि चीनी जनता अब "पूँजीवादी विकास" के जुमलों के चक्कर में न पड़ सरकार के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द कर रही है।

चीन के पूँजीवादी शासक अन्धाधुन्ध मुनाफ़े की होड़ में पर्यावरण की भी बुरी तरह तबाही कर रहे हैं। खदानों से बेतहाशा खनिज निकालने के कारण आये दिन दुर्घटनाएँ तो हो ही रही हैं, प्राकृतिक सम्पदा का भी विनाश हो रहा है। जंगलों की बेरहमी से कटाई और सारे नियमों को ताक पर धरकर प्रदूषणकारी कारख़ानों को अनुमति दिये जाने के कारण कई शहरों में साँस लेना भी दूभर होता जा रहा है। वास्तविक समाजवाद के दौर में जहाँ ह्वांगहो और यांग त्से-क्यांग जैसी नदियों की बाढ़ की समस्या पर काबू पा लिया गया था वहीं अब चीन में हर साल बाढ़ से भयंकर तबाही मचने लगी है।

जहाँ एक तरफ़ चीन का पूँजीपति वर्ग आर्थिक संकट से जूझ रहा है वहीं मज़दूरों तथा आमजन समुदाय के संघर्ष भी उसे चैन की साँस लेने नहीं दे रहे हैं। पिछले कुछ सालों से चीन जनान्दोलनों के प्रमुख स्थानों में से एक बना हुआ है। वर्ष 2011 के बाद से चीन में होने वाली हड़तालों तथा प्रदर्शनों मेंहर साल दोगुनी वृद्धि हुई है। चीन का ऐसा कोई औद्योगिक क्षेत्र नहीं बचा है यहाँ मज़दूरों के बड़े-छोटे संघर्ष न फूट रहे हों। आर्थिक संकट के शिकार चीनी पूँजीपति वर्ग के अलावा विश्व पूँजीपति वर्ग को भी जनसंघर्षों का ख़ौफ़ खाये जा रहा है। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के तहत जब पूँजीवादी पथगामियों के ख़िलाफ़ जनान्दोलन जारी था, उस समय माओ-त्से-तुङ ने कहा था कि अगर चीन की राज्यसत्ता पर पूँजीवादी पथगामी काबिज़ हो भी जाते हैं तो चीनी जनता उन्हें एक दिन भी चैन की नींद नहीं सोने देगी। आज कामरेड माओ की यह भविष्यवाणी पूरी तरह सच साबित हो रही है।

– **अखिल**

"अच्छे दिनों" की असलियत...

(पेज 10 से आगे

समझने की ज़रूरत है। लेकिन साथ ही हमें यह भी समझने की आवश्यकता है कि कोई भी पूँजीवादी चुनावी पार्टी आज हमारे सामने कोई विकल्प पेश नहीं कर सकती क्योंकि पूँजीवादी चुनावों के रास्ते कोई बुनियादी क्रान्तिकारी परिवर्तन आ ही नहीं सकता है। आज जब पूरी पूँजीवादी व्यवस्था की नंगई, घिनौनापन, अपराधी और भ्रष्ट चरित्र इस कदर हमारे सामने है, तो हमें समझ लेना चाहिए कि अब इस व्यवस्था के दायरे के भीतर मज़दूर वर्ग किसी किस्म की परिमाणात्मक बेहतरी की भी मुश्किल से ही उम्मीद कर सकता है। पूँजीवादी व्यवस्था अपनी उम्र से काफ़ी ज़्यादा जी चुकी एक ऐसी बूढ़ी मुर्गी है जो दुनिया को ग़रीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी, युद्ध और पर्यावरणीय विनाश जैसे सड़े और बदबूदार अण्डे ही दे सकती है! इसकी सही जगह इतिहास का कूड़ेदान है। मज़दूर वर्ग अपनी नयी क्रान्तिकारी हिरावल पार्टी का निर्माण करके और एक मज़दूर इंक़लाब के ज़रिये समूची पूँजीवादी व्यवस्था को तबाह करके और एक समाजवादी व्यवस्था का निर्माण करके ही अपनी आने वाली पुश्तों के लिए एक बेहतर भविष्य और दुनिया तैयार कर सकता है। क्या इस काम को आगे बढ़ाने में पहले ही काफ़ी देर नहीं हो रही है?

कौशल विकास : मज़दूरों के लिए नया झुनझुना और पूँजीपतियों के लिए रसमलाई

(पेज 1 से आगे)

कौशल विकास की इस योजना के दो पहलू हैं। एक का सम्बन्ध पूँजीपतियों से है और दूसरा मज़दूरों से जुड़ा है। इस समय पूँजीवाद भयानक मन्दी की दहलीज़ पर खड़ा है। इस मन्दी की मार से ग्रीस जैसा देश दिवालिया हो चुका है और बहुत से दिवालिया हो सकते हैं। भारत का रिज़र्व बैंक भी भारत के पूँजीपतियों को आने वाली मन्दी के विरुद्ध लगातार चेतावनी दे रहा है। एक तरफ़ पूँजी का अम्बार लगा हुआ है, लेकिन मुनाफ़े की गिरती हुई दरों के कारण पूँजीपति और बैंक उद्योगों में पैसा लगाने यानी नये उद्योग खोलने से बच रहे हैं। इन हालातों में मुनाफ़े की दर तभी बढ़ सकती है, जबकि श्रमशक्ति को सस्ता कर दिया जाये यानी मज़दूरियाँ घटायी जायें। अब सरकार सीधे-सीधे तो यह काम कर नहीं सकती, इसलिए कौशल विकास की झाँसापट्टी देकर इसे अंजाम दे रही है। ख़ुद पूँजीपतियों के संगठनों द्वारा जुटाये गये आँकड़े कौशल विकास द्वारा बेरोज़गारी ख़त्म करने के दावों की पोल खोल देते हैं। उद्योगपतियों के संगठन एस्सोचेम ने बताया है कि उत्तर पूर्व के राज्यों में 20 लाख से अधिक लोग बेरोज़गार हैं, अगर वहाँ कारख़ाने लगाये जायें तो मात्र 1.5 लाख लोगों को ही रोज़गार मिल सकता है। उसी तरह तमिलनाडु का उदाहरण लें जो गुजरात के बाद देश का सबसे अधिक औद्योगिकीकृत राज्य है, लेकिन यहाँ भी कारख़ानों में काम करने वाले नियमित श्रमिकों की संख्या काफ़ी कम है और ज़्यादातर मज़दूर (66 प्रतिशत आबादी) कैजुअल लेबर का काम करती है।

इतने भर से साफ़ है कि कौशल विकास के नाम पर मज़दूरों की श्रमशक्ति की आख़िरी बूँद तक निचोड़ लेने की और देशी-विदेशी पूँजीपतियों को अकूत मुनाफ़ा कमाने की छूट देने की पूरी तैयारी कर ली गयी है। हुनर सिखाने और रोज़गार देने के लोक लुभावन नारे का वर्ग सार यही है।

तपिश

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के कमाण्डर, देश के सच्चे क्रान्तिकारी सपूत, आज भी सच्ची आज़ादी और इंसाफ़ के लिए लड़ रहे हर नौजवान के प्रेरणास्रोत

चन्द्रशेखर आज़ाद

के जन्मदिवस (23 जुलाई) के अवसर पर

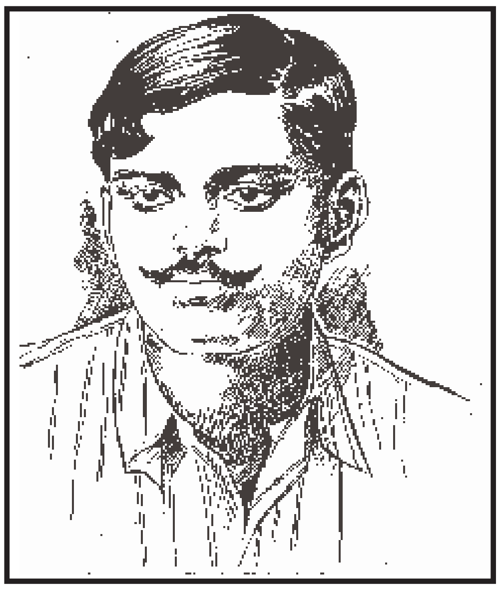

शहादत थी हमारी इसलिए
कि आज़ादी का बढ़ता हुआ सफ़ीना
रुके न एक पल को
मगर ये क्या, ये अँधेरा?
ये कारवाँ रुका क्यों है?
बढ़े चलो,
कि अभी काफ़िला-ए-इंक़लाब को
आगे, बहुत आगे जाना है....

'आज़ाद' के साथी क्रान्तिकारी शिव वर्मा की पुस्तक 'संस्मृतियाँ' के प्रेरणादायी अंश

आज़ाद का जन्म 23 जुलाई, सन 1906 तदनुसार सावन सुदी दूज दिन सोमवार को मध्य प्रदेश में अलीराजपुर रियासत के भावरा ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम पं. सीताराम तिवारी और माता का नाम श्रीमती जगरानी देवी था।

भावरा ग्राम पहले अलीराजपुर रियासत में था। देश की आज़ादी और रियासतों के विलयन के बाद वह मध्य भारत का अंश बना। फिर मध्य भारत और मध्य प्रदेश के विलयन के बाद वह मध्य प्रदेश में आ गया। इस समय वह झाबुआ जिले में है।

आज़ाद के पितामह उत्तर प्रदेश में जिला कानपुर में रहने वाले थे। पिता पं. सीताराम तिवारी का बचपन तथा यौवन के कुछ वर्ष उन्नाव जिले के बदरका गाँव में बीते। पं. सीताराम के पाँच पुत्र थे। प्रथम पुत्र सुखदेव का जन्म बदरका में हुआ था। बाक़ी चार का जन्म भावरा में हुआ। आज़ाद सबमें छोटे थे।

बचपन से ही पढ़ने-लिखने के बजाय तीर-कमान या बन्दूक़ चलाने में आज़ाद की रुचि अधिक थी। वे प्राय: स्कूल का बहाना लेकर घर से निकल जाते और रास्ते में अपने दोस्तों के साथ थानेदार-डाकू का खेल खेलते रहते या फिर तीर-कमान चलाने का अभ्यास करते और जानवरों का शिकार करते। आज़ाद की इन सब बातों से परेशान होकर उनके माता-पिता ने उन्हें काम से नौकरी में लगा देने की सोची। तहसील में नौकरी मिल भी गयी। लेकिन आज़ाद भला उस सबमें कब बँधने वाले थे। अवसर मिलते ही एक मोती बेचने वाले के साथ वे बम्बई चले गये। वहाँ उन्हें कुछ मज़दूरों की सहायता से जहाज़ों को रंगने वाले रंगसाज़ों की मदद करने का काम मिल गया और उन्हीं की सहायता से उनके साथ के लोगों की कोठरी में लेटने-भर की जगह भी मिल गयी। अपने बम्बई जीवन की चर्चा करते हुए उन्होंने वैशम्पायन से बतलाया कि शाम को वे मज़दूर उन्हें अपने साथ अपनी कोठरी पर ले गये। खाने को पूछा तो कह दिया खा चुका हूँ। दूसरा दिन मूँगफली-भेल आदि खाकर और पानी पीकर पार कर दिया। एक सप्ताह तक यही क्रम चलाने के बाद उन्होंने होटल की शरण ली।

बम्बई में आज़ाद के लिए सबसे कठिन समस्या थी रात बिताने की। मज़दूरों की उस छोटी कोठरी में जितने लोग एक साथ सोते थे उनकी श्वासों से वहाँ की हवा दूषित हो जाती थी, उस पर कोई-कोई लोग खँखार कर किसी कोने में थूक भी देते थे। सारी कोठरी में बीड़ी का धुआँ भरा रहता था। उसमें कोई खिड़की भी नहीं थी इसलिए बाहर की स्वच्छ हवा आदि का भी कोई रास्ता नहीं था। आज़ाद ऐसे घुटन भरे वातावरण में सोने के आदी नहीं थे। इसलिए काम से छूटने पर खा-पीकर वे सिनेमा में जा बैठते और कोठरी तभी जाते जब नींद रोकना असम्भव हो जाता।

आज़ाद के बम्बई के जीवन के बारे में वैशम्पायन ने लिखा है, "बम्बई में आज़ाद सप्ताह में एक बार स्नान करते थे। क्योंकि सवेरे पाँच बजे उठकर नहाने की सुविधा नहीं थी, पास में कपड़े भी इतने नहीं थे कि नित्य उन्हें धोकर सुखाते और बदलते, इसलिए वे रविवार को ही नहाते थे। उस दिन छुट्टी होती थी इसलिए देर तक सोते रहते। बाद में प्रातविधि से निवृत्त हो नाश्ता करते और उसके बाद घूमते हुए चोर बाज़ार जाते। वहाँ से एक हाफपैण्ट और कमीज़ खरीदकर साबुन-तेल लेते। फिर किसी जनपथ के नल पर बैठकर नहाते, पुराने कपड़े उतार फेंकते और उस दिन खरीदे कपड़े पहिन लेते। ये खरीदे कपड़े भी पुराने ही होते थे परन्तु धोबी के धुले होने के कारण सप्ताह भर चल जाते। फिर सिर में तेल डाल, पुराने कपड़े आदि आस-पास फेंक देते और किसी होटल में भोजन करने चल देते। इसके बाद सड़कों के चक्कर, चिड़ियाघर की सैर या किसी पार्क में पेड़ की छाँह में विश्राम। उसके बाद चौपाटी पर बैठकर समय बिताना और शाम होते ही फिर सिनेमा भवन में घुस जाना।

"धीरे-धीरे उन्हें बम्बई के उस यन्त्रवत जीवन से घृणा हो गयी। वे यह अनुभव करने लगे कि यदि उन्हें पेट भरने के लिए नौकरी या मज़दूरी ही करनी थी तो वह अलीराजपुर में मिल ही गयी थी। उसके लिए घर छोड़कर इतने कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता थी। तब एक रविवार को जब वे नहा-धोकर होटल में भोजन करने गये तो भोजन करते-करते उन्होंने बम्बई छोड़ने का निश्चय कर लिया। परन्तु घर वापस जाना नहीं था इसीलिए संस्कृत पढ़ने बनारस जाने का विचार किया।...

"होटल से भोजन करने के पश्चात उन्होंने सीधे रेलवे स्टेशन की राह पकड़ी। सामान तो घर से कुछ लेना नहीं था, जो कुछ था वह पास ही था। एक सप्ताह की कमाई भी जेब में थी। स्टेशन पर जानकारी प्राप्त कर बनारस की गाड़ी में बिना टिकट जा बैठे। **बम्बई से जाते समय वे एक चीज़ अवश्य ले गये। और वह था मज़दूरों के जीवन का उनका अपना खुद का अनुभव। उनकी स्थिति से भी वे अच्छी तरह परिचित हो गये थे। क्रान्तिकारी जीवन में जब मज़दूरों की परिस्थिति के विषय में चर्चा चलती तो वे उस पर अधिकारपूर्वक बोलते थे। उसी प्रकार भावरा में वे आदिवासियों तथा किसानों के जीवन को भी निकट से देख चुके थे। इसीलिए किसान तथा मज़दूरों के राज की जब वे चर्चा करते तो उसमें उनकी सहानुभूति की झलक स्पष्ट दिखायी देती थी।"**

बनारस में उन्नाव निवासी श्री शिवविनायक मिश्र से उनकी मुलाक़ात हुई और मिश्रजी की सहायता से उन्हें एक संस्कृत पाठशाला में प्रवेश भी मिल गया। इसके कुछ दिन बाद ही 1921 का असहयोग आन्दोलन आरम्भ हो गया और उसी में संस्कृत कॉलेज बनारस पर धरना देते हुए वे गिरफ़्तार कर लिये गये। अदालत में जब उनसे पूछा गया तो उन्होंने बतलाया-"आज़ाद"। तभी से वे आज़ाद के नाम से पुकारे जाने लगे।

इस केस में आज़ाद को 15 बेंतों की सज़ा हुई थी। बेंत लगाने के बाद उन्हें जेल से बाहर कर दिया गया। खून से लथपथ वे किसी तरह पैदल घिसटकर अपने स्थान पर पहुँचे। वहाँ सराय गोवर्धन में गौरीशंकर शास्त्री ने घाव ठीक होने तक उनकी खूब सेवा की।

स्वस्थ हो जाने के बाद आज़ाद काशी विद्यापीठ में भर्ती हो गये। यह 1922 की बात है। यहीं पर उनका श्री मन्मथनाथ गुप्त तथा श्री प्रणवेश चटर्जी से परिचय हुआ। यह दोनों साथी पहले ही क्रान्तिकारी दल की सदस्यता प्राप्त कर चुके थे। प्रणवेश की निगाह आज़ाद पर पड़ी और उन्होंने धीरे-धीरे आज़ाद को भी दल का सदस्य बना लिया। और तब से जीवन के अन्त तक अडिग भाव से साबितक़दमी के साथ वे सशस्त्र क्रान्ति के मार्ग पर लगातार आगे बढ़ते रहे।

आज़ाद एक साहसी और जोशीले नौजवान थे। उनके इन्हीं गुणों के कारण पार्टी द्वारा जहाँ कहीं भी ऐक्शन आयोजित होता तो उसमें आज़ाद को अवश्य भेजा जाता था।

...

यह सही है कि हम लोग सशस्त्र क्रान्ति के रास्ते पर थे। लेकिन उस क्रान्ति का मुख्य उद्देश्य था मानव मात्र के लिए सुख और शान्ति का वातावरण तैयार करना। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' हमारा उद्देश्य था और इस नाते मनुष्य मात्र के प्राणों से हमें

(पेज 15 पर जारी)

(पेज 14 से आगे)

गहरा मोह था। हम व्यवस्था के विरोधी थे, व्यक्तियों के नहीं। व्यक्तियों से हमारा टकराव उसी हद तक था जिस हद तक वे असमानता पर आधारित उस समय की सामाजिक अथवा राजनीतिक व्यवस्था के प्रतिनिधि बन कर आते थे। व्यक्तिगत खून-ख़राबा हमारा उद्देश्य नहीं था। फिर आज़ाद तो उन लोगों में थे जिन्हें मांस देखकर बेचारे बेगुनाह मासूम बकरे की शक्ल याद आने लगती थी।

और सच बात तो यह है कि जिसकी आँखों में सबके लिए आँसू नहीं और जिसके हृदय में सबके लिए प्यार नहीं वह शोषक और अत्याचारी से घृणा भी नहीं कर सकता–अन्त तक उससे जूझ भी नहीं सकता। हिंसा और अहिंसा एक ही चित्र के दो पहलू हैं जो समय और परिस्थिति के अनुसार अपना रूप बदलते रहते हैं। जो काम एक समय हिंसा जान पड़ता है वही बदली हुई परिस्थिति में अहिंसा बन जाता है। और जिस पर एक समय हम अहिंसा कहकर नाज करते हैं वही दूसरी हालात में हिंसा बन जाता है। आज़ाद में इस दोनों रूपों का ग़ज़ब का समन्वय था। और मैं समझता हूँ यहाँ पर वे हम सबसे बड़े थे।

आज़ाद संगीत प्रेमी थे। भगवानदास और विजय से वे प्रायः ही गाना सुनाने का अनुरोध करते रहते थे। एक बार रात के समय लगभग दस बजे एक साथी से मिलकर वे मेरे साथ अपने निवास स्थान पर वापस जा रहे थे। उस समय हम लोग कानपुर के तत्कालीन प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्ता श्री रामसिंह (अब स्वर्गीय) के यहाँ ठहरे थे। पुलिस के अवांछनीय लोगों की निगाह से बचने के ख़्याल से हम लोगों ने सड़क छोड़कर मूलगंज की एक गली का रास्ता पकड़ लिया। अभी हम कुछ ही क़दम आगे बढ़े होंगे कि ऊपर कोठे से किसी बाईजी ने ठुमरी की तान भरी। कमरे की खुली खिड़कियों से जाड़ों की रात के सन्नाटे को चीरकर गाने वाली का सुरीला स्वर हवा में तैरने लगा। पन्द्रह-बीस क़दम आगे निकल जाने पर आज़ाद ने मेरा हाथ दबाया, "यार, बहुत अच्छा गा रही है, दो मिनट सुन लो।" सचमुच सन्नाटे के उस वातावरण में गाने ने एक समां पैदा कर दिया था। गायिका अपने तन के भूखे किसी शुष्क सौदेबाज के सामने अपने जीवन की सारी वेदना उड़ेले जा रही थी और नीचे दो अजनबी उसकी कला का सौरभ बटोर रहे थे। थोड़ी देर में हमें अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ तो इच्छा न रहते हुए भी हम वहाँ से चल दिये। गाने का स्वर दूर तक हमारा पीछा करता रहा।

संगीत एक जादू है, इस सत्य को देखकर भी उस दिन पहचान नहीं पाया था। आज सोचता हूँ जो कला आज़ाद जैसे सतत चौकसी और सतर्कता बरतने वाले व्यक्ति को भी थोड़ी देर के लिए अपनी स्थिति से ग़ाफ़िल कर सकती है, शहर की बदनाम गली में बाँधकर खड़ा रख सकती है वह निश्चय ही सशक्त है, महान है।

लिखने-पढ़ने के मामले में आज़ाद की सीमाएँ थीं। उनके पास कॉलेज या स्कूल का अंग्रेज़ी सर्टिफिकेट नहीं था और उनकी शिक्षा हिन्दी तथा मामूली संस्कृत तक ही सीमित थी। लेकिन ज्ञान और बुद्धि का ठेका अंग्रेज़ी जानने वालों को ही मिला हो ऐसी बात तो नहीं है। यह सही है कि **उस समय तक समाजवाद आदि पर भारत में बहुत थोड़ी पुस्तकें थीं और वे भी केवल अंग्रेज़ी में ही। आज़ाद स्वयं पढ़कर उन पुस्तकों का लाभ नहीं उठा सकते थे लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आज़ाद उस ज्ञान की जानकारी के प्रति उदासीन थे। सच तो यह है कि केन्द्र पर हम लोगों से पढ़ने-लिखने के लिए जितना आग्रह आज़ाद करते थे उतना और कोई नहीं करता था। वे प्रायः ही किसी न किसी को पकड़कर उससे सिद्धान्त सम्बन्धी अंग्रेज़ी की पुस्तकें पढ़वाते और हिन्दी में उसका अर्थ करवाकर समझने की कोशिश करते। कार्ल मार्क्स का 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' दूसरी बारी आदि से अन्त तक मैंने आज़ाद को सुनाते समय ही पढ़ा था।**

भगतसिंह और सुखदेव के आ जाने पर सैद्धान्तिक प्रश्नों पर ख़ासतौर पर बहस छिड़ जाती थी। हमारा अन्तिम उद्देश्य क्या है, देश की आज़ादी से हमारा क्या मतलब है, भावी समाज कैसा होगा, श्रेणी रहित समाज का क्या अर्थ है, आधुनिक समाज के वर्ग संघर्ष में क्रान्तिकारियों की क्या भूमिका होनी चाहिए, राजसत्ता क्या है, कांग्रेस किस वर्ग की संस्था है, ईश्वर, धर्म आदि का जन्म कहाँ से हुआ आदि प्रश्नों पर बहस होती और आज़ाद उसमें खुलकर भाग लेते थे।

ईश्वर है या नहीं इस पर आज़ाद किसी निश्चित मत पर पहुँच पाये थे, यह कहना कठिन है। ईश्वर की सत्ता से इनकार करने वाले घोर नास्तिक भगतसिंह की दलीलों का विरोध उन्होंने कभी नहीं किया। अपनी ओर से न उन्होंने कभी ईश्वर की वकालत की और न उसके पीछे ही पड़े।

शोषण का अन्त, मानव मात्र की समानता की बात और श्रेणी-रहित समाज की कल्पना आदि समाजवाद की बातों ने उन्हें मुग्ध-सा कर लिया था। और समाजवाद की जिन बातों को जिस हद तक वे समझ पाये थे उतने को ही आज़ादी के ध्येय के साथ जीवन के सम्बल के रूप में उन्होंने पर्याप्त मान लिया था। वैज्ञानिक समाजवाद की बारीकियों को समझे बग़ैर भी वे अपने-आप को समाजवादी कहने में गौरव अनुभव करने लगे थे। यह बात आज़ाद ही नहीं, उस समय हम सब पर लागू थी। उस समय तक भगतसिंह और सुखदेव को छोड़कर और किसी ने न तो समाजवाद पर अधिक पढ़ा ही था और न मनन ही किया था। भगतसिंह और सुखदेव का ज्ञान भी हमारी तुलना में ही अधिक था। वैसे समाजवादी सिद्धान्त के हर पहलू को पूरे तौर पर वे भी नहीं समझ पाये थे। यह काम तो हमारे पकड़े जाने के बाद लाहौर जेल में सन 1929-30 में सम्पन्न हुआ। भगतसिंह की महानता इसमें थी कि वे अपने समय के दूसरे लोगों के मुक़ाबले राजनीतिक और सैद्धान्तिक सूझबूझ में काफ़ी आगे थे।

आज़ाद का समाजवाद की ओर आकर्षित होने का एक और भी कारण था। आज़ाद का जन्म एक बहुत ही निर्धन परिवार में हुआ था और अभाव की चुभन को व्यक्तिगत जीवन में उन्होंने अनुभव भी किया था। बचपन में भावरा तथा उसके इर्द-गिर्द के आदिवासियों और किसानों के जीवन को भी वे काफ़ी नज़दीक से देख चुके थे। बनारस जाने से पहले कुछ दिन बम्बई में उन्हें मज़दूरों के बीच रहने का अवसर मिला था। इसीलिए, जैसा कि वैशम्पायन ने लिखा है, किसानों तथा मज़दूरों के राज्य की जब वे चर्चा करते तो उसमें उनकी अनुभूति की झलक स्पष्ट दिखायी देती थी।

आज़ाद ने 1922 में क्रान्तिकारी दल में प्रवेश किया था। उसके बाद से काकोरी के सम्बन्ध में फरार होने तक उन पर दल के नेता पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल का काफ़ी प्रभाव था। बिस्मिल आर्यसमाजी थे। और आज़ाद पर भी उस समय आर्य समाज की काफ़ी छाप थी। लेकिन बाद में जब दल ने समाजवाद को लक्ष्य के रूप में अपनाया और आज़ाद ने उसमें मज़दूरों-किसानों के उज्ज्वल भविष्य की रूपरेखा पहचानी तो उन्हें नयी विचारधारा को अपनाने में देरी न लगी।

आज़ाद हमारे सेनापति ही नहीं थे। वे हमारे परिवार के अग्रज भी थे जिन्हें हर साथी की छोटी से छोटी आवश्यकता का ध्यान रहता था। मोहन (बी. के. दत्त) की दवाई नहीं आयी, हरीश (जयदेव) को कमीज़ की आवश्यकता है, रघुनाथ (राजगुरु) के पास जूता नहीं रहा, बच्चू (विजय) का स्वास्थ्य ठीक नहीं है आदि उनकी रोज की चिन्ताएँ थीं।

दिल्ली में जब निश्चित रूप से यह फ़ैसला हो गया कि भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ही असेम्बली में बम फेंकने जायेंगे तो मुझे और जयदेव को छोड़कर बाक़ी सब साथियों को आदेश दिया गया कि वे दिल्ली से बाहर चले जायें। आज़ाद को झाँसी जाना था। जब वे चलने लगे तो मैं स्टेशन तक उनके साथ हो लिया। रास्ते में बोले, "प्रभात, अब कुछ ही दिनों में यह दोनों (उनका मतलब भगतसिंह और दत्त से था) देश की सम्पत्ति हो जायेंगे। तब हमारे पास इनकी याद भर रह जायेगी। तब तक के लिए मेहमान समझकर इनकी आराम-तक़लीफ़ का ध्यान रखना।" उस दिन रास्ते भर वे भगतसिंह और दत्त की ही बातें करते रहे। वे भगतसिंह को इस काम के लिए भेजने के पक्ष में नहीं थे। सुखदेव और भगतसिंह की जिद के सामने सिर झुका कर ही उन्होंने वह फैसला स्वीकार किया था, लेकिन अन्दर से भगतसिंह को खोने के विचार से वे दुखी थे।

आज़ाद के बारे में अधिकांश लोगों ने या तो कल्पना के सहारे लिखा है या फिर दूसरों से सुनी-सुनायी बातों को एक जगह बटोरकर रख दिया है। कुछ लोगों ने उन्हें जासूसी उपन्यास का नायक बना उनके चारों ओर तिलिस्म खड़ा करने की कोशिश की है। दूसरी ओर कुछ ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने अपने को ऊँचा दिखाने के ख़्याल से उन्हें निरा जाहिल साबित करने की कोशिश की है। फलस्वरूप उनके बारे में तरह-तरह की ऊलजुलूल धारणाएँ बन गयी हैं–उसमें मानव सुलभ कोमल भावनाओं का एकदम अभाव था, वे केवल अनुशासन का डण्डा चलाना जानते थे, वे क्रोधी एवं हठी थे, किसी को गोली से उड़ा देना उनके बायें हाथ का खेल था, उनके निकट न दूसरों के प्राणों का मूल्य था न अपने प्राणों का कोई मोह, उनमें राजनीतिक सूझ-बूझ नहीं के बराबर थी, उनका रुझान फासिस्टी था, पढ़ने-लिखे में उनकी पैदाइशी दुश्मनी थी आदि। कहना न होगा कि आज़ाद इनमें से कुछ भी न थे। और जाने-अनजाने उनके प्रति इस प्रकार की धारणाओं को प्रोत्साहन देकर लोगों ने उनके व्यक्तित्व के प्रति अन्याय ही किया है।

जिन लोगों ने उन्हें फासिस्ट कहा है उन्होंने उनकी चन्द ऊपरी खूबियों को ही देखा है। असली आज़ाद तथा उनके अन्दर हमेशा जगने वाले आदर्श को या तो उन्होंने समझा ही नहीं अथवा समझकर भी न समझने का प्रयत्न किया है। अहिंसा में अविश्वास, मध्य श्रेणी का आतंक, सेना की प्रधानता आदि फासिज़्म की ऊपरी बातें हैं। आज़ाद को भी अहिंसा में विश्वास न था, मध्य श्रेणी में उनका जन्म हुआ था और वह बचपन से ही फ़ौजी तबीयत के थे। लेकिन क्या इतने से ही उन्हें फासिस्ट का ख़िताब दिया जा सकता है? मेरी समझ में ऐसा करना आज़ाद और फासिज़्म दोनों के प्रति नासमझी का सबूत देना होगा। फासिज़्म का उद्देश्य है क्रान्ति के आगे बढ़ते हुए पहिये को पीछे की ओर खींचना, साम्राज्यवाद की शक्ति को मज़बूत करना तथा जन समुदाय को धोखा देकर पूँजीवाद को मरने से बचाना। आज़ाद अथवा उनकी संस्था के बारे में इनमें से एक बात भी नहीं कही जा सकती। वे तो साम्राज्यवाद के कट्टर शत्रु थे और पूँजीवादी समाज व्यवस्था को समाप्त कर समाजवाद की स्थापना उनके जीवन का उद्देश्य था।

आज़ाद के व्यक्तिगत जीवन के बारे में कुछ लोगों की धारणा है कि वे बड़े कठोर, अक्खड़ और हठी थे। यह बात भी ग़लत है। दल के अन्दर केन्द्रीय समिति के फ़ैसलों पर अपना फ़ैसला लादने की उन्होंने एक बार भी कोशिश नहीं की। हाँ, सेनापति के नाते काम के समय वे बड़ी सख़्ती से पेश आते थे और शायद इसी को बढ़ा-चढ़ाकर दिखलाने की कोशिश में लोगों ने उन्हें पत्थरदिल समझ लिया होगा। उन्हें अपने साथियों से बेहद प्यार था। उनका जीवन बड़ा ही सादा और उनकी अपनी निजी आवश्यकताएँ बहुत कम थीं। आज़ाद को अपनी माँ के प्रति कितना आदर और उनके लिए कितना मोह था इसका एक सजीव वर्णन श्री राजाराम शास्त्री ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार प्रस्तुत किया है।।

"काफ़ी देर तक हम लोग घूम चुके, तब एक जगह पता नहीं कोई पार्क था या खेत, हम सुस्ताने के लिए बैठ गये और बातचीत करने लगे। काफ़ी देर तक जब इधर-उधर की बातें हम लोग कर चुके, तब मैंने उनसे पूछा कि 'कहो भाई आज़ाद, तुम देश में इधर-उधर घूम रहे हो, क्रान्तिकारी पार्टी में काम करते हो, हर समय पुलिस तुम्हारे पीछे पड़ी रहती है और तुम्हें भूमिगत जीवन व्यतीत करना पड़ता है। क्या तुम्हें कभी अपनी पूज्य माता जी की याद नहीं सताती? जब तुम्हें माँ की याद आती होगी, तब क्या करते हो', बस, मेरा इतना कहना था कि आज़ाद का चेहरा एकदम बदल गया। वह दुखी हो उठे और उनकी आँखें छलछला आयीं, कण्ठ रुँध गया। वह कुछ देर तक चुप रहे, एक शब्द भी न बोल सके। फिर बोले कि भाई यही मेरे जीवन की सबसे बड़ी कमज़ोरी है। और पुलिस मेरी इस कमज़ोरी को भली-भाँति जानती है। पुलिस जानती है कि जब मुझे माता जी की याद सतायेगी तो मैं उनके पास छिपकर जाने का अवश्य प्रयत्न करूँगा, तब उसे मुझे पकड़ने का अवसर हाथ लग जायेगा। इसलिए मैं माँ के पास जाता ही नहीं। अपनी मातृभूमि के कारण यदि मैं पकड़ा गया तो पार्टी का कितना बड़ा नुकसान हो जायेगा–कह नहीं सकता।"

"उन्होंने फिर कहा कि, 'जब मुझे बहुत ज्यादा माता जी की याद सताने लगती है, तब मैं इस तरह उनकी पूजा करने लगता हूँ कि हे माँ, तू कभी न समझना कि तेरा बेटा तुझे भूल गया है, पर क्या करूँ माँ, मैं तुझ तक पहुँच नहीं पाता हूँ, क्षमा करना। ...इस प्रकार धरती माता को माथा टेक कर अपनी माता जी की वन्दना कर लेता हूँ और आँसू बहाकर अपने दुखी मन को सान्त्वना दे लेता हूँ।' इतना कहकर वह फिर चुप हो गये। मैं भी प्रभावित हो गया। आज़ाद को दुखी देखकर मैंने बातचीत का विषय बदल दिया।"

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर : आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि : दिनांक 20 प्रत्येक माह

लाइलाज मर्ज़ से पीड़ित पूँजीवाद को अज़ीम प्रेमजी की ख़ैरात की घुट्टी

अखिल

हाल ही में देश की शीर्ष आईटी कम्पनी विप्रो के चेयरमैन अज़ीम प्रेमजी द्वारा अपनी आधी सम्पत्ति दान किये जाने को लेकर पूरा पूँजीवादी मीडिया उन्हें वर्तमान युग के "दानवीर कर्ण" के रूप में पेश कररहा है। विप्रो में 73.39 फ़ीसद (99,500 करोड़ रुपये) के हिस्सेदार अज़ीम प्रेमजी ने कम्पनी में अपने 39 फ़ीसद हिस्से को दान करने की घोषणा की है। उनके इस क़दम ने पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक संकट से उभरने की नाकाम कोशिश कर रहे पूँजीपति वर्ग के उदास चेहरे पर भीनी मुस्कान ला दी है। यही नहीं, इस बाबत पूँजीवादी मीडिया द्वारा किये जा रहे प्रचार से आम मध्यवर्ग तथा मज़दूरवर्ग का पढ़ा-लिखा हिस्सा भी प्रभावित हो रहा है। मध्यवर्ग (ख़ासकर युवा) तो जैसे इस "दयालु-कृपालु" धनपशु की पूजा-आराधना में ही लग गया है। भारत के "बिल गेट्स" कहे जाने वाले अज़ीम प्रेमजी की "सादगी" (बाक़ी पूँजीपतियों से तुलना में) तथा "दयालुता" पर वह इस क़दर अभिभूत है कि अज़ीम प्रेमजी को अपने "रोल मॉडल" (प्रेरणास्रोत) के रूप में देख रहा है। लेकिन क्या दान देना पूँजीपतियों के लिए कोई नयी बात है? आइये देखें, सन् 1848 में लिखी गयी महान रचना "कम्युनिस्ट घोषणापत्र" में कार्ल मार्क्स इस बाबत क्या कहते हैं:

मार्क्स लिखते हैं कि पूँजीवादी समाज में बुर्जुआ वर्ग का एक हिस्सा हमेशा धर्मार्थ और सुधार के कामों में लगा रहता है। इससे जनता का पूँजीवाद के प्रति भ्रम बरकरार रहता है और पूँजीवाद की उम्र बढ़ती है। इससे पूँजीवादी समाज में ग़रीबी और बदहाली का उन्मूलन नहीं होता, समानता और न्याय की स्थापना नहीं होती। बल्कि शोषक और अन्यायी व्यवस्था के क़ायम रहने की ज़मीन तैयार होती है।

इस आधार पर पूँजीपतियों को मोटे तौर पर दो धड़ों में विभाजित किया जा सकता है। पहले धड़े में वे पूँजीपति हैं जिन्हें अपनी नाक के आगे कुछ नज़र नहीं आता। अपने व्यक्तिगत हित इनके लिए सर्वोपरि हैं। ये पूँजीपति नितान्त अदूरदर्शी हैं क्योंकि वे अपने तात्कालिक हितों की प्राप्ति को तरजीह देते हैं। पूँजीपतियों का बहुसंख्य इसी धड़े में ही आता है। भारत के सन्दर्भ में देखें तो अम्बानी, सहारा, माल्या आदि इसी श्रेणी में आते हैं। जनता में भी इनके बारे में कोई भ्रम नहीं है, बल्कि वह इन्हें नफ़रत भरी दृष्टि से ही देखती है। दूसरा धड़ा उन पूँजीपतियों का है जो अपने व्यक्तिगत हितों की चिन्ता करते हुए, उन्हें लूट का अधिकार प्रदान करने वाली पूँजीवादी व्यवस्था की सेवा के लिए भी तत्पर रहते हैं। अपनी लूट की कमाई का एक हिस्सा ख़ैरात में बाँट वे पूँजीवादी व्यवस्था के "मानवीय पहलू" (जो वास्तव में है ही नहीं) को उजागर करने की कोशिश करते हैं। ये पूँजीपति इस मायने में अधिक ख़तरनाक होते हैं कि इनके धर्म-कर्म के कामों की वजह से आम जनता की इनके बारे में अच्छी राय होती है। और इनके द्वारा किये जाने वाले धर्म-कर्म के कामों का मक़सद भी यही होता है। आर्थिक संकटों के दौर में जब जनता पूँजीवादी व्यवस्था से पूरी तरह निराश-हताश होकर नये विकल्प के बारे में सोचना शुरू करती है तो यह पूँजीपति जनता में पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति झूठी उम्मीद जगाते हैं। भारत के सन्दर्भ में टाटा, अज़ीम प्रेमजी और नारायण मूर्ति इस धड़े के बड़े नाम हैं। 2010 में विश्व के सबसे बड़े धनपशुओं बिल गेट्स और वॉरेन बफ़ेट द्वारा शुरू किये गये अभियान "गिविंग प्लेज" यानी "दान देने की सौगन्ध" पर हस्ताक्षर करने वाले पहले भारतीय पूँजीपति अज़ीम प्रेमजी ही थे।

लेकिन क्या अज़ीम प्रेमजी की इस "दयालुता" का अर्थ यह निकाला जाये कि वे अपनी कम्पनी में काम करने वाले कर्मचारियों के शोषण मेंभी रियायत बरतते होंगे? बिल्कुल नहीं। इसका पता इसी बात से लग जाता है कि जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी के भूतपूर्व सीईओ तथा अपने कर्मचारियों पर निरंकुश प्रबन्धन की पद्धति लागू करके उन्हें ज़्यादा से ज़्यादा निचोड़ने के लिए कुख्यात जैक वेल्च को वे अपना प्रेरणास्रोत मानते हैं। भारत में जैक वेल्च की इस पद्धति को सबसे पहले लागू करने वाली कम्पनी भी"दानवीर" अज़ीम प्रेमजी की विप्रो ही थी। और उनकी इस "दानवीर" वाली छवि की पोल 2013 में ऑक्सफाम द्वारा जारी की गयी रिपोर्ट पर उनकी एक टिप्पणी से ही खुल जाती है। यह रिपोर्ट अमीरी-ग़रीबी के बीच में बढ़ती खाई की एक डरावनी तस्वीर पेश कर रही थी। इस रिपोर्ट पर टिप्पणी करते हुए प्रेमजी ने कहा था कि समाजवादी ताक़तों को हावी होने से रोकने के लिए भारत के सर्वाधिक अमीर पूँजीपतियों को अधिक से अधिक दान देना चाहिए। इस टिप्पणी में जनान्दोलनों के प्रति उनका ख़ौफ़ साफ़ नज़र आ रहा है।

दूसरा, क्या अज़ीम प्रेमजी ने अपनी आधी सम्पत्ति सचमुच लोगों में बाँट दी है या उन्होंने यह सम्पत्ति कल्याणकारी योजनाओं को जारी रखने के मक़सद से सरकार को दे दी है? नहीं, उन्होंने यह सम्पत्ति अपनी संस्थाओं " अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन" और "अज़ीम प्रेमजी फ़िलैन्थ्रोपिक इनिशियेटिव्ज़" को स्थानान्तरित की है। "अज़ीम प्रेमजी

फ़ाउण्डेशन" पिछले दस साल से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही है। लगभग 8 राज्यों में इस संस्था ने अज़ीम प्रेमजी के नाम पर स्कूल तथा विश्वविद्यालय खोले हैं। बाक़ी स्वयंसेवी संस्थाओं की ही तरह यह भी शिक्षा के क्षेत्र में सरकार की नाकामी पर पर्दा डालने का काम करती है। जनता में यह भ्रम फैलाने का काम करती है कि इनकी ख़ैरात के दम पर शिक्षा की समस्या दूर हो जायेगी, जबकि असलियत में इनकी ख़ैरात से बहुत कम बच्चों को ही लाभ पहुँचता है। हाँ, "निशुल्क एवं समान शिक्षा" की माँग के इर्द-गिर्द संगठित होने से जनता का ध्यान ज़रूर भटक जाता है। ऐसी संस्थाओं द्वारा खोले गये विश्वविद्यालय तो और भी ख़तरनाक काम करते हैं। अमेरिका की कारनेगी, फ़ोर्ड, रोकफ़ेलर, बिल गेट्स मेलिण्डा आदि फ़ाउण्डेशनों की तर्ज पर "अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन" के विश्वविद्यालय भी पूँजीपति वर्ग के "थिंक टैंक" पैदा करने की मशीनरी के तौर पर काम करते हैं। जो सरकारों को पूँजीवादी व्यवस्था पर मँडरा रहे ख़तरों के बारे में पहले से आगाह करने का काम करते हैं तथा सरकारों द्वारा लोक-नीतियों के निर्माण के लिए गठित कमेटियों में घुसकर पूँजीपति वर्ग के हित में नीतियाँ गढ़ने में सरकार की मदद करते हैं।

अज़ीम प्रेमजी की दूसरी संस्था " अज़ीम प्रेमजी फ़िलैन्थ्रोपिक इनिशियेटिव्ज़" शिक्षा के अलावा अन्य क्षेत्रों में अपना आधार बनाने के चलते बनायी गयी है। यह संस्था इन क्षेत्रों में काम कर रहीं स्वयंसेवी संस्थाओं को अनुदान देने का काम करती है। अपने आधार को विस्तारित करने की सनक पूरी करने के चलते अज़ीम प्रेमजी ने अप्रैल, 2015 में आरएसएस से सम्बद्ध संस्था राष्ट्रीय सेवा संगम के कार्यक्रम में जाने से भी गुरेज़ नहीं किया था। राष्ट्रीय सेवा संगम नाम की इस संस्था के अन्तर्गत 500 स्वयंसेवी संस्थाएँ आती हैं। और संघ से जुड़ी यह संस्था किस मक़सद से धर्म-कर्म का काम करती है इसके बारे में बताने की ज़रूरत नहीं है। संघ की ये संस्थाएँ जनता में अन्धविश्वास, अतार्किकता, साम्प्रदायिकता फैलाने का ही काम करती हैं। इसके लिए संघ से सम्बद्ध "भारत विकास परिषद्" नाम की स्वयंसेवी संस्था द्वारा बच्चों के बीच चलायी जा रही सवाल-जवाब प्रतियोगिता "भारत को जानो" का उदाहरण ही काफ़ी है। इस प्रतियोगिता के ज़रिये यह संस्था मिथकों से जुड़े सवाल पूछकर उन्हें इतिहास के रूप में स्थापित करने का काम कर रही है। लेकिन अज़ीम प्रेमजी को इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है कि आरएसएस की विचारधारा क्या है, उन्हें तो बस पूँजीवादी हितों की पूर्ति से मतलब है।

देखा जाये तो मोदी सरकार ने आम बजट में कल्याणकारी नीतियों के मद में भारी कटौती (75,000 करोड़ रुपये) की है। अज़ीम प्रेमजी को जनता से अगर इतना ही प्यार होता तो वे मोदी सरकार पर यह कटौती न करने के लिए दबाव बना सकते थे। मोदी सरकार ने अब तक के अपने कार्यकाल में जितने जनविरोधी क़दम उठाये हैं उनके विरुद्ध आवाज़ उठा सकते थे। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अज़ीम प्रेमजी एक पूँजीपति हैं और वह अच्छी तरह जानते हैं कि उनकी तथा उनके भाई-बन्धुओं की कमाई मज़दूरों के शोषण पर टिकी है। और लूट की कमाई खाने की उनकी आदत ने दुनिया की मेहनतकश आबादी को बदहाल कर दिया है। यही वजह है कि दुनियाभर में मज़दूरों के स्वयंस्फूर्त संघर्ष फूट रहे हैं। इन्हीं बदलते हालातों से भयभीत अज़ीम प्रेमजी तथा उनके जैसे अन्य पूँजीपति ख़ैरात बाँटने में लग गये हैं। लेकिन वे ख़ुद भी इस भ्रम के शिकार हैं कि उनकी ख़ैरात पूँजीवाद को चिरजीवी बना सकती है।

आम कर्मचारियों एवं धनपशुओं की तनख़्वाहों में ज़मीन-आसमान का अन्तर

ग़ौरतलब है कि कम्पनियों के मालिकों और ऊँचे अधिकारियों के पास मालिकाने हक़ के रूप में कम्पनियों के शेयर तो रहते ही हैं, उसके अलावा वे कम्पनी के पदाधिकारी की हैसियत से मोटी रक़म तनख़्वाह के रूप में वसूलते हैं। हालाँकि ये तनख़्वाहें इन धनपशुओं की आय का मुख्य स्रोत नहीं होती हैं लेकिन फिर भी कर्मचारियों की तनख़्वाहों का उनकी तनख़्वाह से तुलना करना दिलचस्प होगा। अभी कुछ समय पहले तक उनकी तनख़्वाहें सार्वजनिक नहीं की जाती थीं। लेकिन नये कम्पनी क़ानून और सेबी के ताज़ा कार्पोरेट गवर्नेंस कोड आने के बाद से कई कम्पनियों ने शीर्ष प्रबन्धन की तनख़्वाहें सार्वजनिक की हैं जो आँखें खोलने वाली हैं। भारत के सबसे बड़े रईस मुकेश अम्बानी की तनख़्वाह रिलायंस इण्डस्ट्रीज़ में काम कर रहे कर्मचारियों की औसत आय से 205 गुना अधिक है। आईटीसी कम्पनी के कार्यकारी अध्यक्ष वाई सी देवेश्वर के मामले में तो यह अनुपात 439 गुना है। विप्रो के अज़ीम प्रेमजी के मामले में यह अनुपात 89 गुना, एचडीएफ़सी के आदित्य पुरी के मामले में यह 117 गुना, इम्फ़ोसिस के सीईओ विशाल सिक्का के मामले में यह 116 गुना है। इसके अलावा इन खुलासों में यह भी सामने आया है कि अधिकांश कम्पनियों में शीर्ष प्रबन्धन की तनख़्वाहें औसत कर्मचारी की तनख़्वाह के मुक़ाबले कहीं अधिक तेज़ी से बढ़ी हैं। दूसरी तरफ़ आम कर्मचारियों और मज़दूरों की वास्तविक तनख़्वाहों में लगातार गिरावट आ रही है। अर्थशास्त्री बताते हैं कि उद्योगों में कुल पूँजी निवेश के अनुपात में वेतन, चिकित्सा, मुआवजा आदि के रूप में मजदूरों को मिलने वाले धन में गिरावट लगातार जारी है। एक अधयय‍न के अनुसार उद्योगों में कुल उत्पादन-व्यय में मज़दूरी का हिस्सा वर्ष 1990-91 की तुलना में वर्ष 2000-01 में घटकर आधा रह गया था। इसमें गिरावट लगातार जारी है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006